सोमसी

अक्तूबर 88

लोकनाट्य विशेषांक

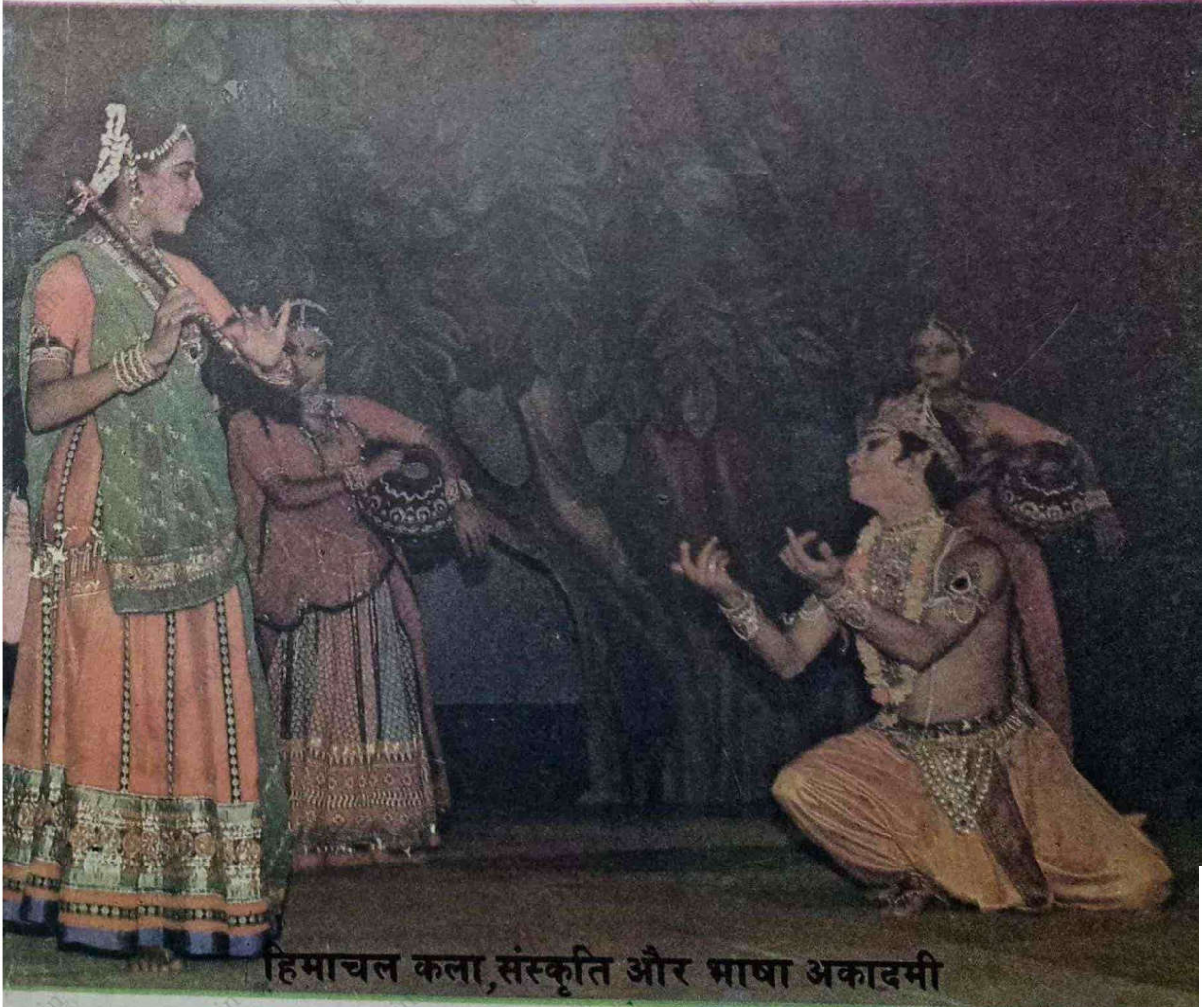

हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी

tharahkardu.in

आवरण:
रास - लीला

ऊपर का चित्र :
रेणुका भील सिरमौर

tharahkardu.in

वर्ष : 14 अंक: 4 पूर्णांक: 56
अक्तूबर 1988 आश्विन कार्तिक 1910 शक, 2045 वि०

सोमसी

संम्पादक

डॉ० बंशीराम शर्मा

पर्वतीय कला, संस्कृति और साहित्य की
त्रैमासिक शोध पत्रिका

हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी
संगरमल भवन, क्लिफ एण्ड एस्टेट, शिमला-171 001

tharahkardu.in

लोक नाट्य विशेषांक

सम्पादकः डॉ० बंशीराम शर्मा
सचिव
हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी,
शिमला- 171001

त्रैमासिकः जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्तूबर में प्रकाश्य

अंकः अक्तूबर, 1988

सम्पादन सहयोगः सरोज सांख्यायन
उपसम्पादकः जयन्ती चौहान
प्रूफ शोधनः निर्मल कौशल

आवरण एवं पारदर्शियांः रवि गुलेरिया, गगल, कांगड़ा, हि०प्र०

वार्षिक मूल्यः 12/-
एक प्रतिः : 3/-

प्राप्ति स्थानः

हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी
संगरमल भवन, क्लिफ एण्ड एस्टेट, शिमला-171 001

विषय सूची

लेख	लेखक	पृष्ठ
सम्पादकीय		
लोक नाट्य वांठड़ा	मुरारी शर्मा	1
लोक नाट्य भगत में भाषिक संवाद	डॉ0 गौतम शर्मा व्यथित	24
बुढ़ड़ा	डॉ· विद्याचन्द ठाकुर	37
लोक नाट्य-भगत	संसार चन्द प्रभाकर	47
लोकनाट्य - बौरा एवं नचार उपजाति - एक सर्वेक्षण	ओम प्रकाश शान्त	65
चन्दरौली	डॉ0 शमी शर्मा	78
करियाला	एम0 आर0 ठाकुर	85
हरणात्र, झांकी और बांढा	अमर सिंह रणपतिया	98
गतिविधियां		104

सम्पादकीय

'सोमसी' के गत अंको में पर्वतीय कला, संस्कृति एवं भाषा से सम्बन्धित विषयों की खोजपूर्ण सामग्री को पाठकों ने पसन्द किया है । हम भी इस के स्तर को प्रोन्नत करने एवं पाठकों को पठनीय सामग्री उपलब्ध कराने हेतु प्रयत्नशील हैं । हिमाचल प्रदेश में प्रचलित विविध लोक नाट्यों पर प्रामाणिक सामग्री प्रकाशित करने का चिरसंचित संकल्प इस अंक में "लोक नाट्य विशेषाक" के रूप में आपके हाथों में है। यह सामग्री जिन सुधी विद्वान् लेखकों के सहयोग से पाठकों को उपलब्ध करवाई जा सकी है उन विद्वान् लेखकों अनुसंधिन्सुओं के भी हम आभ्मरी हैं।

लोक नाट्य विशेषांक में 'मुरारी शर्मा' ने अपने मण्डी क्षेत्र के सुप्रसिद्ध लोक नाट्य 'बांठड़ा' की ऐतिहासिक विवेचना करते हुए इसकी मंचीय व्यवस्था पर प्रचुर प्रकाश डाला है। हरिरंग, मालका स्वांग, साधु, चेला-चेली, मनमोहणी, बुजडू, साहब-मेम के स्वांगों और गीतों तथा संवादों का भी उल्लेख किया है । 'डॉ0 विद्याचन्द ठाकुर' ने मण्डी क्षेत्र में प्रचलित 'बुढड़ा लोक-नाटक के अन्तर्गत बुढड़ा, चन्द्रौली की भूमिकाओं और डण्डू, पहाड़ी के स्वांगों का विवेचन किया है। "भगत" जो कि हिमाचल का एक सुप्रसिद्ध नोक-नाट्य है, का लोक नाट्य-भगत में भाषिक संवाद लेख में 'डॉ0 गौतम शर्मा व्यथित' ने लोक नाट्यों की ऐतिहासिकता का उल्लेख करके भगत के प्राण तत्त्व संवाद की खोजपूर्ण विवेचना की है । 'ओम प्रकाश शान्त' के अपने लेख में ऊना जनपदीय नचार उपजाति की ऐतिहासिकता, रहन-सहन, एवं रीति-रिवाजों के साथ-साथ उनके द्वारा पारंपरिक रूप से सुरक्षित अग्नि लोक-नाट्य-बौरा के सर्वेक्षणात्मक अध्ययन में धाजा, गडा, शिवमाला, कारें, और पंजमलंग के प्रसंग पठनीय हैं। 'डॉ0 शमी शर्मा' ने हिमाचल में प्रचलित चन्द्रोली{चन्द्रावली} के इतिहास, अभिनय व गीतों का विश्लेषण करने का सफल प्रयास किया है । 'संसार चन्द प्रभाकर' ने भगत के प्रादुर्भाव, विकास, भाषा एवं संवादों का मनोरंजक वर्णन किया है। "करियाला" में 'एम0 आर0ठाकुर' ने पर्वतीय क्षेत्रों में विविध रूपों में प्रचलित करियाला लोक नाट्य की व्युत्पति, नाट्यकला, संवाद, भाषा, कथानक व्यंग्य और संगीत की ऊहापोह पूर्णक विवेचना करके इसके संरक्षण पर प्रकाश डालते हुए इसकी उपयोगिताऔर कमियों की ओर भी संकेत किया है ।

'सोमसी' का अगला अंक भी 'लोक-नाट्य विशेषांक' {परिशिष्ट} पर केन्द्रित रहेगा प्रस्तुत अंक के शीघ्र मुद्रण में मुद्रक का सहयोग सराहनीय रहा है। आशा है यह अंक विद्वानों एवं पाठकों के लिए संग्रहणीय होगा । पाठकों की प्रक्रियाएं सादर आमन्त्रित हैं ।

डॉ0 बंशी राम शर्मा

लोक नाट्य-बांठड़ा

मुरारी शर्मा

हिमाचल प्रदेश में प्राचीन समय से ही लोक नाट्यों की विशिष्ट परम्परा रही है। ये लोक-नाट्य हास्य प्रधान होने के साथ-साथ अपने समय में फैली कुरीतियों और विसंगतियो का विरोध भी करते आये हैं। जहां यहां के लोकगीतों में हिमाचली संस्कृति प्रवाहित हो उठती है वहीं लोक नाट्यों में यह सब मुखरित हो उठता है। हिमाचल में जहां बीस मील के बाद भाषा के स्वरूप में अन्तर आ जाता है वहीं इन लोक नाट्यों के नाम और उन्हें अभिनीत करने की शैली भी स्वयं ही बदल जाती है। जैसे "करियाला" यह शिमला, सोलन और सिरमौर में प्रचलित है, तो "हरण" कुल्लू जनपद का लोकप्रिय लोक नाट्य है। इसका प्रभाव मण्डी के सनोर-बदार इलाके में भी है। "भगत" कांगड़ा, हमीरपुर में "हरणातर" चम्बा, "होरिंगफ़ो" किन्नौर "बोरा" (भौरा) ऊना और इसके आस-पास के इलाकों में "धाज़ा" बिलासपुर तथा मण्डी जनपद में लोक नाट्य 'बांठड़ा' के नाम से पुकारा जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिमाचल के अलग-अलग क्षेत्रों में इन लोक-नाट्यों को अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है। ये लोक नाट्य हास्य प्रधान होने के साथ-साथ इनमें जन-जीवन के दर्शन की गम्भीर अभिव्यक्ति है। हल्के-फुल्के व्यंग्य में भी किसी न किसी समस्या का निदान होता है।

'बांठड़ा' मण्डी जनपद का लोकप्रिय नाटक रहा है। मझवाड़-मलवाणा, राजगढ़-डुगराई-वटेहड़ा आदि इसके प्रमुख केन्द्र रहे हैं जहां यह लोक नाट्य फला-फूला है। बांठड़ का शाब्दिक अर्थ-सुन्दर, अथावा बनठन कर रहने वाले के लिए भी प्रयुक्त होता है। कुछ विद्वान् बांठड़ा शब्द का सम्बन्ध "भाण्ड" से जोड़ते हैं। भाण्ड शब्द संस्कृत के भार्ण से उत्पन्न हुआ है। जिसे दृश्य-काव्य का एक रूपक माना जाता है, जिसमें हास्य रस प्रधान होत है। कुछ विद्वानों का कहना है कि पुराने समय मे राजाओं के पास बांठ हुआ करते थे। एक दिन वे आपस में हंसी मजाक कर रहे थे जिसमें राजा की कमज़ोरियों का उल्लेख किय जा रहा था, उसे वे अपने ढंग से अभिनीत कर रहे थे।

राजा ने चुपके से उन्हें देख लिया मगर उन पर नाराज़ होने की अपेक्षा उन्हें प्रोत्साहित किया और उन्हें कहा गया कि राजदरबार या प्रजा में जो बात बुरी लगे उसे हास्यरस का पुट देकर राजा के सामने प्रस्तुत किया जाए। तभी से बांठड़ा का प्रचलन हुआ है। एक जनश्रुति के अनुसार सुकेत के राजा 'वीरसेन' के समय में लोग अनपढ़ थे। राजा इस बात से काफी परेशान थे। उन्होंने एक संगीतज्ञ और गायक 'नरेन्द्र' को इस काम के लिये नियुक्त किया। नरेन्द्र ने संगीत और गायन के माध्यम से शिक्षा का प्रसार किया। इसे राजा ने बाणथाड़ा (बाणिथाड़ा) का नाम दिया। जिसका अर्थ था कि ऐसा थाड़ा जहां से लोगों को बाणी सुनाई दे। बाद में यही बाणथांड़ा शब्द 'बांठड़ा' बना।

इतिहास चाहे कुछ भी कहे लेकिन यह सही है कि बांठड़ा को राज्याश्रय मिला था। जिस प्रकार मुगल बादशाहों के दरबारी कवि व शायर होते थे उसी प्रकार मण्डी में दरबारी स्वांगी होते थे। जो विशेष अवसरों पर आकर अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करते थे।

राजतन्त्र का प्रेस :

बांठड़ा को यदि राजतन्त्र का प्रैस माना जाये तो कोई अतिश्योक्ति न होगी। क्योंकि जिस प्रकार आज प्रैस का दायित्व है उसी प्रकार बांठड़ा का कार्य भी था। उस समय राजा राज-दरबार में जब राजा के पास हीसारी शक्तियां केन्द्रित थीं और राजा के समक्ष आम आदमी को एक बात कहने के लिए भी सौ बार सोचना पड़ता था। मगर बांठड़ा कलाकार इस बात के लिए पूर्ण स्वतन्त्र थे। उन्हें जो बात खटकती थी उसे स्वांग द्वारा कह डालते थे। यहां तक कि राजा का स्वांग भी उतारा जाता था और राजा को उसकी कमज़ोरियों से आगाह किया जाता था। जब राजकर्मचारी गांवों में जाकर भोली-भाली जनता पर मनमाने ढंग से अत्याचार करते थे ऐसे समय में बांठड़ा-कलाकार उस घटना का स्वांग बना कर उसे राजा के सामने प्रस्तुत करते थे। आवश्यकता पड़ने पर ये कलाकार भुगतभोगी व्यक्ति को साथ रखकर उस घटना का सत्यापन करवा देते थे। इतना ही नहीं बांठड़ा के माध्यम से प्रचार का कार्य भी किया जाता था। जिस बात का प्रचार करना होता था उसी पर आधारित स्वांग या गीत तैयार करके उसका प्रचार बांठड़ा के माध्यम से गांवों में किया जाता था।

स्वांग और स्वांगी :

स्वांग का शाब्दिक अर्थ है-नकल अथवा उपहासनीय अभिनय, जिसमें मुख्यतः किसी की नकल उतारी जाती है। बांठड़ा में अभिनय करने वाले कलाकारों को स्वांगी कहते हैं। पहले जब बांठड़ा का काफी प्रचलन था तो कई गांवों में इसकी पार्टियां थीं तथा कई स्वांगी दरबारी स्वांगी थे। जब राज दरबार में कोई विशेष आयोजन होता था तो उन्हें

बुलावा भेजा जाता था। कभी-कभी दो तीन पार्टियों को निमन्त्रित करके उनमें मुकाबला करवाया जाता था। जीतने वाली पार्टी को विशेष पुरस्कार किया जाता था। आज भले ही सामाजिक घटनाओं के कारण बांठड़ा का स्वरूप भी बदला है क्योंकि यह तो पहले भी बताया जा चुका है कि अपने समय की सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध आवाज़ लोक-नाट्यों का काम कर रहा है। फिर भी कुछ भूमिकाएं ऐसी हैं जिन्हें पहले जिस तरह से प्रस्तुत किया जाता था। आज भी वैसे ही उसी तरह से प्रस्तुत किया जाता है।

अभिनय और संगीत :

लोक नाट्य बांठड़ा में अभिनय और संगीत पक्ष दोनों ही सशक्त होते हैं। अभिनय में हास्यरस प्रधान होता है। सम्वाद व्यंगपूर्ण होते हैं जिनसे बात-बात पर रसोद्रेक होता रहता है। मगर इनमें भी गम्भीर चिन्तन की झलक अवश्य रहती है। यही लोक नाट्यों की विशेषता रही है। इसमें सम्वाद पूर्ण निर्धारित नहीं होते बल्कि बात को आगे बढ़ाने में स्वांगी माहिर होते हैं।

संगीत पक्ष ही बांठड़ा की वास्तविक जान हैं। बांठड़ा के जमने में संगीत बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शहनाई और नगाड़ा बांठड़ा के प्रमुख वाद्य यन्त्र हैं। किसी भी नकल से पहले शहनाई और नगाड़े का बजाना अनिवार्य है। हर दृश्य में अभिनय से पहले नृत्य और संगीत आवश्यक है। हर दृश्य का अलग गीत होता है। बांठड़ा में नृत्य, संगीत और अभिनय का पूरा समन्वय होता है, एक भी पक्ष कमज़ोर हुआ तो बांठड़ा की वह नकल पिट सकती है। इसलिए बांठड़ा कलाकार को नृत्य का अभ्यास आवश्यक है। नृत्य भी मण्डी जनपद में प्रचलित "लूडी" या इससे मिलता-जुलता होता है।

वेश भूषा :

चूंकि बांठड़ा हास्य प्रधान लोक नाट्य है इस लिए इसमें कलाकारों की वेशभूषा भी वैसी ही होती है। जिससे कलाकारों को देखते ही लोग हंसने लगें। अधिकतर दृश्यों में स्वांगी अपने चेहरों पर मुखौटे लगाते हैं। ये मुखौटे लकड़ी, गत्ते, कपड़े या प्लास्टिक के बने होते हैं।

इसके अलावा दृश्य के अनुसार चोलू, जटायें, दाढ़ी धोती, चोला आदि भी लगाते हैं। जटायें और दाढ़ी अक्सर घास-फूस या 'सेल' आदि की होती हैं जिनको आवश्यकता अनुसार रंग दिया जाता है। कभी-कभी कोई स्वांगी जटाओं के बदले अपने सिर पर 'बया का घोंसला' भी लगाते हैं यह सिर्फ साधू के स्वांग में होता है।

संवाद और गीत

बांठड़ा में सम्वाद पूर्व निर्धारित नहीं होते फिर भी दृश्यों के कथानकको मद्देनज़र

रखते हुए इनके सम्वाद बोले जाते हैं। इनमें हास्य-व्यंग्य की अधिकता के साथ-साथ जीवन-दर्शन की झलक और गूढ़ विचारों का समावेश भी होता है। जैसे साधू के स्वांग में एक औरत साधू से कहती है-"आप गृहस्थी जीवन त्यागकर आये---आपने अपने गुरु से क्या सीखा? वह उससे आगे पूछती है:-

"एक क्या होता है। तो उपहास उड़ाने के लिए कहता है:-

मैं। फिर सही जवाब देता है "एक ओंकार होता है "स्त्रीः-दो क्या होता है? व्यंग्य-"मैं और तू "(दो चांद और सूरज) तीन-हाउं-गुरु होर तू-(तीन त्रिलोकी होती है) इस प्रकार हास्य-व्यंग्य के साथ-साथ ज्ञान की बातें भी बांठड़ा के सम्वाद में चलती हैं। हर दृश्य में अलग-अलग सम्वाद होते हैं। बात में रोचकता लाने के लिए उसे बढ़ाया भी जाता है।

मंच व्यवस्था

बांठड़ा में मंच की आवश्यकता नहीं होती है। यह गांवों की चौपालों, देव-स्थालों या किसी ऐसे स्थान पर, जहां चारों ओर से दर्शक आसानी से देख सकें, अभिनीत किया जाता है। जब राज दरबार में इसका मंचन होता था तब मंच बनवाया जाता था। गावों में जहां चाहें इसका मंचन किया जा सकता है। अखाड़े में एक तरफ खुले में ही जहां लोगों की नजरें न पहुंचें वहां स्वांगी तैयार हो जाते हैं। ग्रीन रूम की कोई आवश्यकता नहीं होती।

प्रकाश

बांठड़े में अलाव जलाया जाता है। जो सर्दी से बचाव और प्रकाश के लिए भी प्रयोग होता था। प्रकाश के लिए चीड़ की लकड़ी (जगणू) या बियुह्ल वृक्ष की लकड़ी (झलयास्ठी) को जला कर भी प्रकाश की व्यवस्था की जाती थी।

प्रथम दृश्य

हरिरंग

मण्डी जनपद में "बांठड़ा का शुभारम्भ हरि रंग से होता है। यह रास नृत्य से सम्बधित है। हरि अर्थात् 'भगवान कृष्ण' और रंग से रास-रंग (रास-नृत्य) माना जाता है। चूंकि यह अभिनय नृत्य है जिसमें हरि रंग द्वारा दो गोपियों के साथ नृत्य मुद्रा में कभी रूठने तो कभी मनाने का अभिनय किया जाता है। इस दृश्य में हरिरंग दो गोपियों के संग पंडाल में प्रवेश करते हैं। एक तरफ एक गोपी का हाथ थामते हैं तो दूसरी तरफ दूसरी का। दोनों गोपियां 'घूंघट' में अपना चेहरा छुपाए रहती हैं-हरिरंग के चेहरे पर मुखौटा

होता है, जिसे देखते ही दर्शकों में हंसी की लहर दौड़ पड़ती है। नेपथ्य से शहनाई और नगाड़ा गूंज उठता है। साथ ही लोक गायकों की आवाज़ों में गीत की निम्न पंक्तिया उभरने लगती हैं:-

हरिरंग लागा साधो-साधो
हरिरंग लागा, के श्याम रंग लागा-लागा
तूहे बोल मेरी रेशमुये हरी बे हरी,
गोरी गोरी बँहिया, हरी-हरी चुड़ियां बे
हो ब्रीज-वासी बे लोका तैं मेरी गागर फोड़ी।
अज मेरा कान्हड़ा वे रूस्सी-रूस्सी जांदा
हो सलौनी तेरी अखियां वे लागे रे।
मेरे ओ मना बसी गया बे मुरली वाला
तट जमना के तीर-बन्सी मोरी बज रही ।

इस गीत के साथ-साथ ही हरिरंग गोपियों के संग अभिनय नृत्य करता हुआ कभी मनुहार तो कभी शरारत करता है। एक-एक गोपी के पास जाकर उसकी चिरौरी करते हुए हाथों में हाथ ले दायरे में घूमते हैं। यही प्रक्रिया दूसरी गोपी के पास दोहराता है। तत्पश्चात् तीनों आपस में हाथ पकड़ कर बड़ी तेजी से घूमते हैं। अन्त में फिर वही मुद्रा बना लेते हैं जिसमें पण्डाल में प्रवेश करते हैं। हरिरंग को भगवान् कृष्ण की वन्दना के रूप में भी लिया जाता है। यही एक ऐसा स्वांग है जिसमें पात्र मूक अभिनय करते हैं। ऐसा भी कहा जाता है कि "बांठड़ा" देवी-देवताओं को समर्पित किया जाता था। इसे मनौती पूरी होने पर आयोजित किया जाता था। इसकी पुष्टि इस गीत से होती है:-

"मालीरेया मामटेया तू बेहड़े सदाया,
बेहड़े सदाई के क्या काम फरमाया।
बाठड़े पाणे मेरे मामा, कान्हा-चन्दरौली नचाणी"।

बल्हघाटी, मण्डी में जहां बांठड़े की शुरुआत हरिरंग से होती है, वहीं करसोग क्षेत्र में मंगलाचरण द्वारा की जाती है :-

शुमिरो शिव देवा,
जगती वारण, संकट हारण
चन्द्रधारण, खलजन मारण,
गण-रक्षक जनरत सेवा
सुमिरो शिव देवा।।

बल्हघाटी का बांठड़ा जहां भगवान् श्री कृष्ण को समर्पित है वहीं करसोग क्षेत्र का 'भगवान् नटराज' शिव की सेवा में समर्पित है। एक और भिन्नता है इनमें जहा बल्हघाटी में प्रचलित बांठड़ा के स्वांग सामाजिक कुरीतियों का भण्डा फोड़ते हैं वहीं करसोग क्षेत्र के बांठड़ा में धार्मिक चरित्रों को लेकर रचे जाते है। इसलिए दोनों में काफी भिन्नता है ।

माल का स्वांग

माल

बांठड़ा का समय सर्दियों का है और इसका प्रारम्भ 'माल् पुन्या' अर्थात् दीपावली से पहले की पूर्णिमा से ही होता है। ऐसी मान्यता है कि इस दिन पूर्णिमा का चान्द सबसे ज्यादा रोशन होता है। इस दिन धूप की तरह चान्दनी खिली होती है। माल् एक त्यौहार भी है। इसे गौ पूजा के रूप में मनाया जाता है। इस दिन गेंदे के फूलों की मालाएं गूंथ कर ग्रामीण बालाएं अपने पशुओं के गले में डालती हैं घर की महिलाओं द्वारा उनकी पूजा की जाती है। उनके सिर के ऊपर से अखरोट फैंके जाते हैं इसी दिन ग्राम देवी मसवाई(मनसा देवी) का रथ निकलता है और शाम ढले मलवाणा से चार पांच किलोमीटर चढ़ाई पर जंगल में स्थित खारसी नाम गांव को जाता है वहीं पर देव काढी-बाला कामेश्वर उसकी अगवानी करता है। इसी दिन रात को बांठड़ा किया जाता है। यह परम्परा आज भी कायम है।

माल् स्वांग में इस त्यौहार के स्वागतार्थ लोक कलाकार निम्न गीत गा कर इसका स्वागत करते है। इस गीत की लय पर झूमता हुआ स्वांगी अलमस्त हो कर नृत्य करता है उसका नृत्य किसी नृत्य शैली में बन्धा नहीं होता कभी वह "लुडी" नृत्य करता है तो कभी यूं ही उछलने-कूदने लगता है। नेपथ्य से शहनाई और नगाड़ों के साथ गीत के बोल गूजते हैं:-

"हो माले् आओ बे सुहागणीये माले्
आओ बे सुहागणीये फूल्ल माले-माले
खोडा होर त्यापा रे ठाले् फाले्
आओ बे सुहागणीये माले् ।
सुती रे लोक ठवाले
आबे सुहागणी माले् !

यह गीत खत्म भी हो जाता है मगर नृत्य करने वाले स्वांगी के पैरों की थिरकन कम नहीं होती, तभी वह इधर से उधर उछलता कूदता रहता है मस्त होता है ।

उसकी इस प्रक्रिया से दर्शकों में रसोद्रेक होता है, खुशी की लहर सी दौड़ पड़ती है। तभी सूत्रधार का पाण्डाल में प्रवेश होता है। जबकि स्वांगी{मामटी} की उछल-कूद उसी तरह कायम रहती है। एक तो उसका बेढंगा पहरावा देख कर ही लोग हंस-हंस कर लोट-पोट हो जाते हैं उपर से उसकी इस तरह की धमा-चौकड़ी और भी रंग जमा देती है।

सूत्रधार उसे रोकता हुआ पूछना चाहता है लेकिन वह अपनी ही धुन में मस्त नृत्य करता रहता है।

सूत्रधारः- "ओ मामटी कुण तू केथी ते आया केथी जो जाणा" लेकिन इस बार भी वह उसकी बात को अनसुनी कर देता है। दर्शक उसकी इस हरकत का बड़ा आनन्द लेते हैं।

सूत्रधारः- ओ आरा मामटी! हाऊं तुजो पुछां, तू कुण हा ?

स्वांगीः- हाऊं जी-----हां जी------हाऊं जी कुछ रूक कर तुजो नी सुझदा क्या हा हाऊं, ओ आरा हाऊं हा आदमी ओये।

सूत्रधारः- आदमी तां तू हा, पर तुध साही हुजख्ली रा आदमी मैं नी देखीरा।

स्वांगीः- हाऊं केहड़ाहाओये!"

सूत्रधारः- ओ आरा तू ता नवंई किस्मा रा आदमी हा ।

स्वांगीः- केहड़ी नवंई किस्मा रा आदमी हा ?

सूत्रधारः- (उसकी लम्बी दाढ़ी की ओर इशारा करता है) । आ देख येढ़ी दाढ़ी आवला नी देखया, अइये नां तू दस केथी ते तू आया केथी जो चली रा। धीरे चारे दस नंईता तू मां अन्दर करना।

स्वांगीः- तू कुणहा मुंजो अन्दर करने आवला।

सूत्रधारः- हाऊं हा ऐथी रा चौकीदार-पखला कोई बी आदमी एथी आ- वहां तेजो हाऊं पुछी लैहआं तू धीरे-चारे दस नंईता मा हुंण सादणे सपाही। कुछ डरने का अभिनय करते हुए।

स्वांगीः- अच्छा जी-सपाही सादणे तुसां, ओ माहराज रैहणा देआ।

सूत्रधारः- तेबे दस तू केथी राहा। होर केथी जो चली रा?

स्वांगीः- ओ माहरा हाऊं हा उपरला जी।

सूत्रधारः- जंजहली रा?

स्वांगीः- पोरे-

सूत्रधारः- सलगवाड़े रा?

स्वांगीः- नेह जी हेठ। विपरीत दिशा की ओर इशारा करता है।

सूत्रधारः- {हारकर}अच्छा ये दस तू कल्हा की होर बी हा तुध साही सावगी कोए।

स्वांगीः- ओ माहरा सावगी ता थी पर सोह गाज़ी ल्हूखी।

सूत्रधारः- कुण थी।

स्वांगीः- ओ माहरा साउगी जी माहरा साओगी थी {उसके कान के पीछे जोर से,कहता

दादी जी ! माहरा सो गाज़ी ल्हूखी जी (रोते हुए) ओ मेरीये दादीये, तू केथी-ओ गईगे।

सूत्रधारः- गल सुण आरा रो नी तू तेरी दादी जाणी मिली, सयाणी माहणू ही बचयारी, लगी री हूंगी सुले-सुले आंवदी। (कुछ सोचकर) तें आपणा नांव नी दसेया, क्या नाओं हा तेरा।

स्वांगीः- मेरा नांओ जी माहरी सोंह रही गया घरा जी, जनाने आगे (जेबे टटोलता हुआ) हाऊं सच बोल्या करा हां, माहरा मांह बल्ले नीहा।

सूत्रधारः- ओ आरा से कोई चीज नीही जे जनाने बल्ले देणा, धीरे-चारे दस नंयी ता तू हूंण लई जाणा ठाणे जो।

स्वांगीः- माहरा..मेरा नांओं जी---(जोर से) फींचू जी।

सूत्रधारः- नाओं ता बड़ा बांका हा तेरा। अच्छा सेजे आऊंदी लगीरी तेसारा क्या नाओं हा।

स्वांगीः- दादी रा जी?

सूत्रधारः- हां तेरी दादी रा।

स्वांगीः- तेसारा नांओ बी मांह साही हा।

सूत्रधारः- (चकित होकर) तुध साही-

स्वांगीः- हां जी तेसा रा नांओ हा फींची।

सूत्रधारः- अच्छा टोली लै तेसा जो (दर्शकों की ओर इशारा करते हुए) देखया इन्हां मंझा ले कोई लई जांदा तेसा जो। (नेपथ्य से शहनाई की धुन और नगाड़े बजने लगते।

मनमोहणी और बुजड़ू का स्वांग

माल के पश्चात् बांठड़ा में मनमोहणी और बुज़ड़ू का स्वांग आता है। इस स्वांग में एक बदसूरत महिला जो अपने आपको चतुर-सुशील और सुघड़ गृहिणी कहलवाती है। वह तर्कशास्त्र में प्रवीण होती है। सूत्रधार से उसका तर्क विद्वतापूर्ण होने के साथ-साथ व्यंग्यात्मक भी होता है। इस स्वांग के अधिकांश समय तक उसका सूत्रधार से संवाद होता है। यह भी बिछड़े पति-पत्नि की हास्य कथा है। मनमोहणी का पति बुजड़ू बच्चे को कन्धे पर उठाए उसे ढूंढता हुआ आवाजे लगाता हुआ पण्डाल मे प्रवेश करता है। बाद मे पति पत्नी सवाद द्वारा दर्शको का खूब मनोरजन करते है। नेपथ्य से शहनाई और नगाड़े बजने लगते हैं-लोकगीत गाया जाता है इसी गीत पर नृत्य करते हुए मन मोहणी पण्डाल मे प्रवेश करती है--

"उड परदेसीआ भौंरा आसा जाणा ठाकर द्वारे
आसा पुजना ठाकर द्वारे।

सूत्रधारः- क्या जी कुणहे तुसे केथी जो चली रे?

मनमोहणीः-किपुछां तू? कल्ही जनाने जो देखी कने क्या ज्यू तानी खराब हुई गईरा, क्या मतलब तेरा, तू मुंजो दसी दे।

सूत्रधारः- म्हातमीयें हाऊं ऐथी रा चौकीदार, राती जो कोई भी आवा हां तेजो हाऊं पुछी लाहां राती कोई चोर तानी हो जे ठीक पता दसी देहां ता छाड़ी देहा नईं ता हाऊं जेला भेजी देहां।

मनमोहणीः-हाऊं ही बापूआ मनमोहन।

सूत्रधारः- पाऐंपे जी (झुककर अभिवादन करता है।)

मनमोहनः-चरझीउणा बापूआ मारकंडेरी पवे कुतूआ, बिलूआ, सूंगरूआ। (दर्शक हंसते हैं)

सूत्रधारः- अच्छा मनमोहणी ही तूसे तेबे बहुत कुछ जाणा ही मुंजो तूसे पुराणे जमाने री गलां ता सुणाई देआ क्या क्या खाणा बणांहीं, क्या क्या सीण परोण जाणां हीं मुंजो तूसे पिछली गलां ता दसी देआ।

मनमोहणीः-सूरज मोहेया चन्दा मोहेया गिण-गिण मोहे तारे, तूध साही कई चलांहे थे मा पिछे बचयारे। ओ बापूआ भले जेबे हाऊं पकोंही थी ता घराटा रे पुड़ा साही बणांही थी, पतरोड़ू जेवे बणाहीं थी ता मुहल्ला साही पोगे, सीण सीहां थी ता हाथां बराबरी टूपे देहीं थी। ऐभे सेओ गलां नी रही री ऐभे ता जनाने सीउण हाथा नी पकड़दी, बटन बी टूटी जाहां ता 'सोई' बाले कपड़े लई जांही। "अइये तूसे कल्हे आइरे कि कोई साओगी बी हा!"

सूत्रधारः- ता तूसे तिन्हां जो हाक पाया तेबे आओणा तिन्हा झट चारे। कल्हे सेओ कि होर भी हा साओगी?

मनमोहणीः-मठा भी हा साओगी तेजो भूख लगीरी हूंघी।

सूत्रधारः- ओ ता तूसे तीन्हा जो हाक़ पाई ला।

मनमोहणीः-किहां पाऊं जनाने नी लैंदी आपणे खसमा रा नांओं। आसे ही पुराणे जमाने री जनाने। किहां पाणी मा हाक?

सूत्रधारः- ऐभे लई लाड़े रा नांओं-तुसे पाई देआ हाक।

मनमोहनीः-ओ बुजड़ूआ-ओ बुजड़ू-ओ बुजड़ूआ-------! (दर्शकों के बीच से आवाज़ उभरती है) आई गयागे। बच्चे को कंधे पर उठाये बुजड़ू पण्डाल में प्रवेश करता है।

गाना-"खपरूये लाईरा बणबास खपरी जली मरदी बे हां-हां खपरी जली मर दी हा-"इस गीत पर बुजड़ू नृत्य करता है।

सूत्रधारः- क्या जी कुण्हे तुसे-क्या जी हाऊं तूसा जो पुछेया क़रहां कुणहे तूसे केथी ते आये केथि जो चली रे।

बजड़ूः- की पूछां तू।

सूत्रधारः- हाऊं हो ऐथी रा चौकीदार राती जो कोई भी आये तिन्हां जो पुछी लाहां कि कोई चोर तानी हा। जे आपणा पता ठीक दसी देआ ता छाडी देहां नंई ता जेल्हा जो भेजी देआं। हाऊं हा बुजड़ू हाऊं चली रा मनाली जो होर बशिष्ठ न्हावंदा सौगी कुणहां ऐ ऊपर बव्यालीरा।

ऐ हो मेरा मठा अइये ना ऐथी एक जनाने बी आई री से टोलदी लगीरी आपणे लाड़े जो ता तू है तानी हा से तेबे हाऊं मलाई देऊं तुसा जो। केथी से दसी दे तेसा जोऐ छोरू रोया करां ये भी हाका पाया करां ममी ओ ममी! चूचू पीणे मां मुंजो झट मिलाई दे इने मेरे पराण खाई दिती रे। दानो को मिलवा देता है अब दोनों एक दूसरे पर कटाक्ष करते है केथी थे मुइरे-केथी थे दाबी रे हाऊं सारी रात मरी गई टोली-टोली के कल्ही जनाने कधी घरा ला बाहर नी नीकली री तुसा पीछे एडेवारी लोका मंझ पया आवणा यो भी पता नी क्या बोलदे हुंगे। ओहो बे मेरीये जोके! तूजो देखी कने यो सब लपोके। अइये ना सेछोरू केथी हा। भूखा मारी गयो से आमा----मुंजो भूख लगीरी {रोते हुए} आव मेरा बच्चा भुखा मारीता मेरामठा तुसे ता। एक बार-पुनःशहनाई और नगाड़े बज उठते हैं। दृश्य का अन्त

साधु का स्वांग

बांठड़ा में साधु का स्वांग काफी रोचक ढंग से दर्शाया जाता है। साधु हमेशा घुमक्कड़ रहे हैं, एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर लोगों को उपदेश देना धर्म का प्रचार करना इनका प्रमुख कार्य रहा है। लेकिन धीरे-धीरे निकम्मे, पाखंडी और आलसी लोग भी साधु का चोला धारण करके लोगों को ठगने लगे। लोक कलाकारों ने इनकी नब्ज को पकड़ा और जनता को ऐसे पाखंडी साधुओं से सचेत करने के लिए बांठड़ा के माध्यम से स्वांग रच कर ऐसे ढोंगी साधु महात्माओं का भाण्डा फोड़ने लगे।

लोक नाट्य बांठड़ा में साधु के दोनों रूप प्रस्तुत किए गये हैं। एक में जहां साधु पहुंचा हुआ महात्मा होता है वहीं दूसरा घर गृहस्थी से भागा हुआ लेपट और आलसी व्यक्तित्व जो सांसारिक जिम्मेदारियों से निजात पाने के लिए साधु की शरण में जाता है। उसका उद्देश्य ज्ञान-प्राप्ति या साधु संगति ना होकर मात्र गृहस्था जीवन से मुक्त होना है। बांठड़ा में यह दूसरा चरित्र लोगों को अपने अभिनय द्वारा आनन्दित करता है। इस स्वांग में दिखाया गया है कि एक पहुंचा हुआ साधु गांव में मन्दिर के पास अपनी धूणी रमा लेता है। साधु की इस प्रकार लोगों द्वारा सेवा ठहल करते देख उस का विचार भी साधु बनने का होता है और उसी साधु को अपना गुरु मान लेता है। साधु उसकी मुनणा कर लेने से पहले उसे पूछता है कहीं उसने शादी तो नहीं की है। मगर वह साफ मुकर जाता है। अन्त में उसकी घर वाली उसे ढूंढती हुई वहां पहुंच जाती हैऔर सारा भेद खुल जाता है वह साधु और चेले दोनों की पिटाई करती है। व्यंग्य के साथ इस स्वांग में जीवन दर्शन की गम्भीर अभिव्यक्ति भी है।

साधुओं का प्रिय सेवन भांग धंतुरा होता है, उसी को पीकर वे दुनियादारी से बेखबर होकर प्रभु में मस्त रहते हैं। साधु के स्वांग में लोक कलाकारों ने किस प्रकार साधु की मानसिकता को पकड़ा है । उसका अन्दाजा स्वांग के प्रारम्भ में गाये जाने वाले से

लगाया जा सकता है।

गाना

पी लैणी बुटी हो राम की पी लैणी बुटी हो राम की,
सदा रहे अलमस्त जोगीया पी लैणी बुटी हो राम की पी लैणी।

साधुः- अहो-----अहो लख शिव शंकर शम्भू फुक दे झोंपड़ी लगा दे तम्बू शिव शंकर ना लगे कांटा ना लगे कंकर-कुछ खाने और कुछ पीने का ढंग कर और पापियों को तंग कर। सूत्रधारः- ऐ माहराज महात्मा जी! आप कौन हो-क्या तुम्हारी शाखा कौन सूत्र है जल्दी बताइये नहीं तो अभी आपको चीमटे की मार चलेगी और कहां से आये और कहा जा रहे हो जल्दी बताईये नहीं तो मैं आप को पुलिस के हवाले करता हूं।

साधुः- अरे बच्चा किसे पूछता है?

सूत्रधारः-मैं आप को पूछ रहा हूं आप कौन हैं? कहां से आये कहां जा रहे हो? जल्दी बताइये अगर आप अपना पूरा पता नहीं बतायेंगे तो मैं आप को पुलिस के हवाले कर दूंगा। जल्दी करो अपना पूरा पता बताओ।

साधुः- मैं हूं साधु मैं तीर्थ यात्रा को चला हूं। मैं गंगोत्री से आया हूं मणीकर्ण, वशिष्ठ और मनीमहेश की यात्रा को चला हूं।

सूत्रधारः-तो आज आप यहां ही विश्राम करेंगे?

साधुः- हां यहीं आराम करूंगा कोई अच्छा सा स्थान बताओ जहां हम आराम कर सकें कोई कुटिया बताओ।

सूत्रधारः-यहीं बैठो विश्राम भी करो और भजन भी करो---साधु भजन करने लगता है। उतने में नकली साधु आ जाता है।

गाना

नाले धारे जोगी आया बन्सरीया बजांदा हो, बंसरीया बजांदा-बजांदा
बे नाले धारे जोगी आया बन्सरीया बल्मा बन्सरीया बजांदा वे-बजादा

सूत्रधारः-ऐ माहराज आप कौन हो? ऐ महाराज आप कौन हैं? मैं आप को पूछ रहा हूं आप--- आप कौन हैं?

जोगीः- मैं जोगी हूं जोगी।

सूत्रधारः-यहां क्यूं आए हो?

जोगीः- मैं तीर्थ-यात्रा करने आया हूं हरिद्वार से आया हूं अब मैं मणीकर्ण जा रहा हूं।

सूत्रधारः-यहां एक महात्मा और भी आया है, उस के साथ मिलता है तो मैं मिला देता हूं।

जोगीः- कहां है उन को मुझ से मिला दो, मैंने उन को नामोनारायण करना है तो वे समझ लेंगे कि कोई साधु आया है। वे हैं कुटिया में उन से आप की बात करवाता

हूं महात्मा जी नमस्कार

साधुः- आओ बच्चा बैठो क्यूं आये?

सूत्रधारः-महात्मा जी यहां एक और साधु आया है वो आप से मिलना चाहता है और आप को गुरू बनाना चाहता आप बताओ उस साधु को मैं आप के पास ले आऊं।

साधुः- ले आओ बच्चा उस को देख लेता हूं कि शिष्य बनाने योग्य है या नहीं अगर होगा तो शिष्य बना लुंगा उस के साथ कोई और तो नहीं है?

जौगीः- महाराज वो तो अकेला ही है उसके साथ कोई भी नहीं है।

ज़ौगीः- चलो जौगी जी मैं आप की बात कर आया हम चलें आप ने जाते ही उनके पैरों पर गिर कर नमोनारायण करना।

जोगीः- गुरू जी लम्बे नाल को । §व्यंग्य में§

साधुः- क्या बोलता है कैसा चेला ले आया चौकीदार?

चागीः- महाराज इस को अभी पता नहीं है कि गुरू को कैसे प्रणाम करना है आप ही इस को समझाओ, ऐसे प्रणाम करो।

चैलाः- जोगी जी हाथ जोड़ कर पैरों पर गिर जाओ और नमोनारायण कहो।

जोगीः- गुरू जी नमोनारायण ।

साधुः- बेटा तू चेला बनना चाहता है?

जोगीः- हां जी गुरू जी।

साधुः- तो ले तेरा पहिले मुंडन संस्कार करता हूं फिर शिक्षा, अब पढ़ो मैं आप को पढ़ता हूं बोलो-ओम्।

जोगीः- ओ आमा।

साधुः- नहीं ऐसा नहीं जुदा-जुदा बोलो ओम् सोसती घंग अछा अब इस को जबानी याद करना और जंगल में जाओ वहां से लकड़ियों ले आओ।

जोगीः- "गुरू मरना लटा-फटा मुंजो मिलना।" जंगल में जाता है वहां उस को भालू मिलता है वहां से भाग कर गुरू ज़ी के पास आता "गुरू जी मेरे को जंगल में काला-काला मिला वोखाता तो नहीं क्या है वो।"

साधुः- बेटे वो तो भालू है भालू।

जोगीः- फिर जंगल में जाता है उस को वहां बन्दर मिल जाता है फिर भाग कर गुरू जी के पास आता है," गुरू जी मेरे को आज एक ऐसा मिला वो पेड़ की टहनीयों पर छलांग लगाता और फिर वो ऊं-ऊं-करता रहता, वो खाता तो नहीं"।

साधुः- नहीं बेटे वो नहीं खाता अच्छा अब हम बैठ कर भगवान का भजन करते है।

(गुरू चेला भजन करते है)- राम सूमर लै सूमरन कर लै को जाने कल की भजन बिना को जाने कल की।

कौड़ी-कौड़ी माया जोड़ी पाप करे छल की भजन बीना को जाने कल की ।

जब ये हसा देही के भीतर खुशिया कर मन की जब हसा निकल जायेगा माटी जगल भजन बिना को जाने कल भजन बिना।

उतने मे चेले की पत्नी उसे ढूढती हुई आती है उसके पण्डाल मे पहुंचते ही निम्न गीत शहनाई पर गूज उठता है।

ब्रागण का गाना

अपने पिया मैं जोगन बनूंगी मैं अपने पिया की जोगन बनूंगी
जोगन बनूंगी बरागन बनूंगी अपने पिया की मैं जोगन बनूंगी।

सूत्रधारः-आप कौन हैं?कहां से आई हैं,कहां जाना?

औरतः- आप क्यूं पूछते हो, पहिले आप अपना परिचय दो फिर मैं अपना परिचय दूंगी।

सूत्रधारः-मैं इस जगह का चौकीदार हूं यहां कोई भी आता है उनको मैं पूछ लेता हूं कोई चोर-उचका तो नही अगर मुझे शक हो जाता तो मैं उन को पुलिस के हवाले कर देता हूं आप अपना परिचय बताओ आप कौन हैं इस अंधेरी रात में यहां धूम रही हो।

औरतः- मैं ब्रागण हूं, मेरा पति घर से भाग कर कहीं चला गया है मैं उन को ढूंढ रही हूं अगर आप को उन का पता है तो बताने की कृपा करें ।

सूत्रधारः-यहां दो साधु आये हैं मैं उन से पूछ लेता हूं कि यहां पर एक औरत आई है वो अपने पति को ढूंढ रही है.आप की औरत तो नही हैं।ये महात्मा जी! यहां एक औरत आई वो कहती है कि मेरा पति घर से भाग कर चला गया। मैं उन को ढूंढ रही हूं आप की औरत तो नहीं है?

दोनोंः- नहीं नहीं हमारी औरत नहीं है।

सूत्रधारः-वो तो इन्कार करते हैं हमारी कोई औरत नहीं है।

औरतः- आप मुझे उन के पास ले चलो मैं देख लूंगी वही है या नही है।

ब्रागण को साथ ले जाता है कुछ ही दूरी पर उससे बता देता है ये हैं वो दोनों साधु, आप अपने पति को पहचान लो।

औरतः- हां हां ये जो भगवें कपड़े वाला है- वह है।

सूत्रधारः-क्यूं माहराज महात्मा जी आप कहते थे कि मेरी कोई औरत नहीं है वो औरत कहती है कि जो भगवें कपड़े वाला है वो है मेरा पति, चलो वो आप को बुलाती है. चलो जल्दी करो मैं बताता हूं उस औरत को, आप की औरत है या नहीं है।

जोगीः- नो नो माई लेडी नो. ﴾ग्रामीण लहजे में अग्राजी बोलता है﴿

चैलाः- वो तो अंगरेजी बोलता है।

ब्रागणः-वो तो अमरीका में भी रहते थे।

चैलाः- महात्मा जी चलो, उन्होंने पहचान लिया है वो तो अमरीका रहते थे अंग्राजी भी बोलते हैं। अब लाहौल सीपति की भाषा में बोलने लगा।

चैलाः- वो तो लाहैली बोली बोलता है।

ब्रागणः-वो तो वहां भी रहे है।

चैलाः- चलो महाराज पहचान लिया है आपको उसने।

जोगीः- ﴾पंजाबी मे बोलने लगा﴿ केड़ी ओये! साडी कोई लाड़ी नी हैगी अपां ते जोगी है, जोगी।

चैलाः- वो तो पंजाब की भाषा बोल रहा है।

ब्रागणः-वो तो वहां भी रहे है।

चौकीः-चलो महाराज पैहचान लिया है आप की औरते ने।

जोगीः-वह लबाणी बोली बोलने लगा।

चैलाः- बो तो लबाणा है गउओं और भेड़ बकरी का बिपार करता है।

ब्रागणः-बो तो उस बिपार को भी करते हैं।

चैलाः- चलो जी अब तो जाना ही पड़ेगा आप को पहचान लिया है उस जोगी को पकड़ कर उस औरत के पास ले आता है।

ब्रागणः-आप का मुंडन संस्कार किसने किया?क्यों किया? घर से भाग कर क्यों आये मुझे अकेली छोड़ कर! बताओ जल्दी बताओ। मुंडन संस्कार किया तो गुरू ने आप को क्या शिक्षा दी नताओ मैं पूछूं तो बताओगे।

जोगीः-हां बताऊंगा।

चैला - चेली के संवाद

चेले की पत्नी पूछती है कि आप की मुनणाकार किसने की।

चैलाः- गुरू ने की।

पत्नीः-आप को आपके गुरू ने क्या सिखलाया?

चैलाः- लच-पच﴾मजाक में﴿ चोरी करना।

पत्नीः- ठीक से बताओ-स्वादों मे स्वाद क्या है?

चैलाः- स्वादों में स्वाद गोबर खाना। ﴾मजाक में﴿

पत्नीः-ठीक ढंग से बताओ स्वादों में स्वाद क्या है?

चैलाः- स्वादों में स्वाद मिठी-मिठी बातें करना।

पत्नीः-फूलों में फूल कौन सा है।
चैलाः- फूलों में फूल (मजाक में) सीम्बल का।
पत्नीः-सही बताओ।
चैलाः- फूलों में फूल कपास का। उस के फूल का कपड़ा सारी दुनिया पहनती है।
पत्नीः-चुजों में चूंज किस की है?
चैलाः-कूरल की होती है--बहुत लम्बी होती है।
पत्नीः-ठीक से बताओ।
चैलाः-हल की। जिस हल से हम अनाज पैदा करते हैं। इस प्रकार व्यंग्य के साथ-साथ स्वांग में ज्ञान की बातें भी बताई जाती हैं। इन्हीं व्यवहारिक ज्ञान की बातों को सुनकर मनोरंजन के साथ-साथ ऐसे विषयों के बारे में जानकारी प्राप्त करते थे जिनका उन्हें पता नहीं होता था। जैसे दूसरे दौर में पत्नी अपने बैरागी पति से सवाल पूछती है कि--एक क्या होता है, मजाक में तो वह कहेगा मैं" लेकिन सही उतर के रूप मे कहेगा "एक ओंकार होता है" उसी प्रकार:-
पत्नीः-एक कौन है।
चैलाः-(मजाक में)एक मैं हूं।
पत्नीः-ठीक से बताओ।
चैलाः-एक ओंकार है।
पत्नीः-दो कौन हैं।
चैलाः-दो (मजाक में) (मैंऔर तू)
पत्नीः-ठीक से बताओ।
चैलाः-दो, चांद और सूरज।
पत्नीः-तीन कौन हैं।
चैलाः-मैं, तू, गुरू तीन हो गये।
पत्नीः-ठीक से बताओ।
चैलाः-तीन लोक हैं(त्रिलोकी)
पत्नीः-कौन कौन है(वह फिर पूछती है)
चैलाः-स्वर्ग लोक, मृत्यु लोक और पाताल ये तीन लोक है।
पत्नीः-चार कौन हैं।
चैलाः-चार-चार-चार गुरू जी चार कौन हैं। (गुरू के पास चला जाता है)
गुरूः-बेटा चार बेद हैं।
चैलाः-(पत्नी के पास आकर चार बेद हैं)

पत्नीः-पांच कौन हैं।

चैलाः-पांच-पांच-पांच, पांच पांडव हैं।

पत्नीः-छः कौन हैं।

चैलाः-छेः छेः-छेः ऋतु हैं।

पत्नीः-सात कौन हैं।

चैलाः-सात-सात कौन हैं। सात, सप्त ऋषि।

पत्नीः-आठ कौन हैं।

चैलाः-आठ-आठ, आठ हैं बार।

पत्नीः-नौ कौन हैं।

चैलाः-नौ-नौ,नौ हैं नवरात्रे।

पत्नीः-दस कौन हैं।

चैलाः-दस..दस..दस गुरु जी, दस कौन हैं।

पुजारीः-बेटा दस हैं दस शीष रावण के।

चैलाः-दस..दस सीस रावन के।

पत्नीः-ग्यारह कौन हैं।

चैलाः-ग्यारह..ग्यारह हैं एकादस ।

पत्नीः-बारह कौन हैं।

चैलाः-बारह, बारह कौन हैं? हां बारह हैं..महीने। पत्नी उससे कहती है तुम्हारे पास बीस टके थे उनका हिसाब दो।

पत्नीः-टके रहे बीही।

चैलाः-अगे मिलेया सीह, टका तेजो दिता ।

पत्नीः-टके रहे उन्ही।

चैलाः-अगे मिली तुध साही मुन्नी, टका तेसाओ दिता।

पत्नीः-टके रहे ठारा।

चैलाः-आगे मिलेया मेरे साही बेचारा, टका तेस जो दिता।

पत्नीः-टके रहे सतारा।

चैलाः-तेता रा लया स्यारा, टका तेथी दिता।

पत्नीः-टके रहे सोला।

आगे मिलेया मेरे साहीं भोला, टका तेस जो दिता ।

पत्नीः- टके रहे पंद्रा ।

चैलाः-आगे मिलेया तेरे साहीं चन्द्रा, टका तेस जो दिता।

पत्नीः-टके रहे चौदा।

चैलाः-उस का लिया उस दिन सौदा।

पत्नीः-टके रहे तेहरा।
चैलाः-उस दिन लिआ था मैंने सेहरा जिस दिन मैंने तेरे साथ शादी की थी।
पत्नीः-टके रहे बारा।
चैलाः-उस दिन लिआ था लकड़ी का भारा।
पत्नीः-टके रहे ग्यारह।
चैलाः-उस दिन लिआ था मैंने सरयारा, व्रत के लीये।
पत्नीः-टके रहे दस।
चैलाः-टका तू ले मेरी मार-मार के कर दी बस ।
पत्नीः-टके रहे नौ।
चैलाः-उस दिन तेरी मां मरी थी तो उस दिन लीये थे जौ।
पत्नीः-टके रहे आठ।
चैलाः-आगे मिली सराब की भाठ, वहां शराब पिया टका वहां दिया।
पत्नीः-टके रहे सात।
चैलाः-उस दिन हुई थी अपने यार से बात, टका उस ने लीया।
पत्नीः-टके रहे छेः।
चैलाः-आगे मिलेआ..से कौन, तेरा बाप, टका उसको दिया।
पत्नीः-टके रहे पांच।
चैलाः-मार-मार कर बना दी मेरी चाप, टकाउसको दिया।
पत्नीः-टके रहे चार।
चैलाः-अब तू मेरे साथ कर ले प्यार, टका और लेले।
पत्नीः-टके रहे तीन।
चैलाः-तूझ को लेजाऊंगा मैं, गुरू बजावे बीन।
पत्नीः-टके रहे दो।
चैलाः-कल मिलेया था वो, टका उसको दिया।
पत्नीः-टका रहेया एक।
चैलाः-अब तू गुरू के आगे माथा टेक, टका और लेले।
इसके साथ, शहनाई और नगाड़े पुनः बज उठते हैं सभी स्वांगी नृत्य करने लगते हैं।

साहब - मेम का स्वांग अंग्रेजों का राज लगभग पूरे भारत वर्ष पर हो चुका था। लेकिन पहाड़ों में उनके स्थाई निवास उनके द्वारा बसाये गये शहरों शिमला, मसूरी, नैनीताल इत्यादि में थे। कभी-कभार वे सैर के बहाने गांवों को भी निकल पड़ते थे उनकी सेवा टहल के लिए हिन्दुस्तानी नौकर हमेशा साथ रहते थे।

नौकर भी कम पढ़े लिखे होते थे, जो अंग्रेजी नहीं समझ पाते थे। साहब के स्वांग में भाषा की कठिनाई के कारण उत्पन्न होने वाले हास्य का जहां चित्रण लोक कलाकारों द्वारा ही ढंग से किया जाता है। वहीं करों के बोझ तले दबी भारतीय जनता पर और कर लादने, के लिए युद्ध की धमकी देना और अंग्रेजों के साथ युद्ध करना इस बात का सबूत है कि इस स्वांग का प्रादुर्भाव हिटलर और सिपाही अंग्रजों की ओर से लड़े थे। और बांठड़ा के स्वांग में जर्मन से अंग्रेज का नौकर लड़ता है, उसे मार भी डालता है। लेकिन बेहोश पड़ा अंग्रेज होश में आते ही मृत पड़े जर्मन को देख कहता है। हमने मारा, हमने मारा। नौकर को थोड़े बहुत पैसे देकर विदा कर देता है।

अंग्रेज साहब जिसका चेहरा लाल होता है, लोक कलाकारों ने उसे लालू साहेब का नाम दिया है। प्रस्तुत गीत में वे उसे इस प्रकार सम्बोधित करते हैः-

गीतः- लालू साहेबा बूढलुआ, मिम {मेम} भी जवानी,
हो लालू साहेबा बूढलुआ, मिम भरी जवानी हो ।

साहब और मेम पण्डाल में हाथों में हाथ डाले घूम रहे हैं उतने में सूत्रधार प्रवेश करता है।

सूत्रधारः-ये महाराज साब जी! आप कहां से आए, कहां को जाना है।
साहबः- तुम क्या बोलता है-कौन है तुम।
सूत्रधारः-साब जी! मैं यहां का चौकीदार हूं------।
साहबः- चौकीदार..यू मीन बाच मैन, अच्छा तुम हमारा एक काम करेगा।
सूत्रधारः-कैसा काम।
साहबः- हम इग्लेण्ड से तुम्हारा इण्डिया में घूमने का है, ये हमारी मेम साहब है।
मेमः- हैलो, हाऊ यू।
सूत्रधारः-नमस्ते जी, नमस्ते।
साहबः- हमें एक अचा {अच्छा} सा नौकर चाहिए, मिलेंगा।
सूत्रधारः-हां साब जी मिलेगा, आप यहीं ठहरो मैं देखता हूं। चौकीदार उन्हें विश्रामगृह में ठहरा देता है और खुद नौकर की तलाश में निकल पड़ता है। पण्डाल के पास फिर शहनाई गूंज उठती है। लामण गाता हुआ एक पहाड़ी {जोकर वेश में} प्रवेश करता है। "हां---हां मांहू थी घूमीरा कांढी कोठी रा मे राणा जवानी आई झूरीये जुठा-लाऊ दुनिया रा खाणा। इसके साथ ही लोक गायकों की आवाज़ उभरती हैः-

घरे पोरू शमीतरा ठंडे पाणीरा नाऴा गे,
ठण्डे पाणी रा नाऴा लो--------।

बाबू छाडू लाके रा, जोड़ू गोरा काला लो, गोरखा काला ....।

उक्त गीत की लय पर झूमता हुआ वह पण्डाल में प्रवेश करता है । सूत्रधार से उसका सामना हो जाता है ।

सूत्रधारः- सुन ओ भाई! तू कुण हा केथी जो चलीरा ।

नौकरः- ओ आरा हाऊं ता हा, पर तू दस तू कुणहा ।

सूत्रधारः- हाऊं हा ऐथी रा चौकीदार तू आपणे बारे दस तू कुणहा, केथी जो चलीरा?

नौकरः- आरा हाऊं चलीरा नौकरी टोलदा, घरा काम कुछ नी रैहीरा ।

सूत्रधारः- नौकरी करनी तुधा, ता गल सुण ऐथी एक साहब आईरा, तेसे जो नौकर री जरूरत ही, साऊगी मीम बी ही ।

नौकरः तेबे ता आरा भाईया तू मेरा काम बणाई दे-चल तू लई चल मुंजो तेस बले ।

सूत्रधारः- चल तेबे ! ‡दोनों अंग्रेज़ के पास आ जाते हैं ।

सूत्रधारः- साब जी! ये आदमी नौकरी करना चाहता है, देख लो इसको कैसा है ।

साहबः- पहले तुमने नौकरी किया है ।

नौकरः- जी साब जी, फौज में किया है ।

साहबः- परेड कर के दिखाओ ।

नौकरः- नौकर परेड करने लगता है । सावधान, विश्राम, सस्त्र कधे रख तेज चल, एक दो-एक दो.... पिछे मूड तेज चल, सावधान विश्राम ।

साहबः- ठीक है ठीक, नौकर अच्छा है, खाना बनाना और बाजार से सामान लाएगा है टलीफोन सुनेगा है धर का काम सारा करेगा जो काम बताए करेगा।

नौकरः- जी हां! सारा काम करूंगा पहले पैसे की बात करो कितने पैसे दोगे ।

साहबः- आप बोलो कितने पैसे लेने हैं अगर ठीक बतायेगा तो हम दे देगें ।

नौकरः- पंजी कम सौ रपईये ।

साहबः- नहीं बहुत ज्यादा है ठीक बोलो कितने लेने हैं ।

नौकरः- ठीक मारा। पंजी कम सौ लेंगें साब, देंगे देओ नीं हाऊं चलेया।

साहबः- इतने नहीं मिलेंगे हम पचेत्र रूपये देगा ।

नौकरः- नई माहराज नहीं पंजी कम सौ‡नौकर अड़ जाता है दोनों एक दूसरे की बात नहीं समझते ‡

साहबः- अच्छा ले लेना काम अच्छा करना पड़ेगा ।

नौकरः- अच्छा काम करूंगा जो बतायेंगे वो करूंगा।

साहबः- अच्छा हम बाजार घूमने गये तूम ने खाना त्यार रखना अगर कहीं से टेलीफौन आयेगा तो सुन लेना और ठीक से काम करना ।

नौकरः- अच्छा जी ! साहब के जाने पश्चात् टेलीफोन की घंटी बाजती है नौकर जूता कान से लगाकर सुनता है- हां जी...हां जी ठीक म्हारा, मीम बमार हुई, धोका नी साहबा, ठीक हुई जांगा तेजा तू नी कर फिक्र हां... अच्छा। इतने में एक साहब पण्डाल में प्रवेश करता है, वह अपने को जर्मन बताता है ।

-मैं जर्मन से आया दे हिन्दुस्तान वालो, मैं जर्मन से आया रे हिन्दुस्तान वालो ! जर्मन रात को बाजार में घूम रहा है उसको चौकी दार मिल जाता है ।

चौ. :- आप कौन हैं ! ये महाराज आप कौन हैं ।

ज. :- मैं जर्मन हूं ।

चौ. :- यहां क्यों आये हो ।

ज. :- तुम क्यों पूछता हाय ।

चौ. :- मैं चौकीदार हूं रात को मुझे कोई मिलता है उसको मैं पूछ लेता है कि कोई डाकू तो नहीं है, अगर अपना परिचय ठीक बताता है तो छोड़ देता हूं नहीं तो पुलिस के हवाले कर देता हूं ।

ज. :- यहां एक अंगरेज भाग कर हिन्दुस्तान आया है मैं उसको ढूंढ रहा हूं अगर वो यहां आया है तो बता दो मैंने उससे कर लेना है ।

चौ0 :- हां महाराज यहां एक साहब और मीम आये हैं में उनसे मिला देता हूं

ज. :- नहीं मैं नहीं जाऊंगा उनको मेरी चीठी दे दो उन्हें कहो कि ये चीठी जर्मन ने दी है या तो मेरा 'कर' दो नहीं तो जंग करो ।

चौ0 :- साहब आप को जर्मन ने चीठी दी है इस को पढ़ो और कहा है कि या तो कर दो नहीं तो जंग के लिए तैयार हो जाओ ।

साहबः- हम जंग करेगा कर नहीं देगा जाओ, बोलो साहब जंग करेगा ।

चौ. :- साहब वो कहते है कि हम जंग करेगा कर नहीं देगा ।

ज. :- उनको कहो कि जंग के लिए आजाओ हम जंग के लिए त्यार हैं ।

नौ.:- नै महाराज जंग नहीं करना 'कर' दे दो ।

सा0 :- हम जंग करेगा कर नहीं देगा। ..... जंग में साहब बेहोश हो जाता है और नौकर उसे मरा समझ कर रोने लगा है- अपनी तनख्वाह के लिए।

नौकरः- ओ मेरेया साहबा । मेरीये तलबे ।

चौ· :- ओ मामटी तू की रोया करहां, अझे से मीम जिऊंदी ही तेसा ते लै तलब जर्मन चौकीदार को कहता है मेम को कहो 'कर' दो नही तो जंग के लिए तैयार हो जाओ ।

चौ· :- मीम साहब जर्मन कहता है कि कर दो, नहीं तो जंग करो ।

मेमः- जंग करुगी कर नहीं दूंगी। जर्मन को कहो आजाओ जंग के लिए। मैं तैयार हूं ।

नौकर :- नहीं मीम साहब जेग नही करना 'कर' दे दो। मैं आप की सेवा करूंगा ।

मेमः- नहीं मैं जंग करूंगी जर्मन को मारूंगी ।

नौकरः- मीम साहब पैहले मेरी तलब देओ फेरी चाहे लड़ो, चाहे मरो ।

मेम :- मैं पहले उसको मारूंगी फिर तुम को पैसा दूंगी, समझे ! जंग शुरू होता है नागाड़ा बजता है, मेम भी बेहोश हो जाती है ।

नौकरः- ओ मेरीये मीमे! ओ मेरीये तलबे! केस देणी मेरी तलब। तलब ना तनखाह नौकरी खामखा {रोता है चिल्लाता} ।

चौ· :- ओ मामटी! क्यूं रोता है तू अब सारी जायदात तेरी होगी ।

ज· :- चौकीदार को बोलता है कि उनके नौकर को कहो तूने भी जंग करना है तो आजा उस नौकर को चीठी देता है तेरे हाले बी हुई गयीरा बोलहां कर दे नईंता लड़ाई कर ।

चौ· :- ओ मामटी से जर्मन तेरे हाले हुई गयीरा बोलहा कर दे नईंता लड़ाई कर ।

नौकरः- अच्छा ऐहड़ा बोलहां, ओ तेंजो बोल तू आव आरा हाऊं नी डरदा ऐड़े टोपे आवलया ले ।

नगाडा बजता है लड़ाई शुरू होती है इस लड़ाई में जर्मन मारा जाता है साहब मेम बेहाश थे नौकर और जर्मन की जब लड़ाई लगी हुई थी कि साहब और मेम को होश आ जाता है वे कहते है कि जर्मन को हम ने मारा हमने मारा, नौकर हैरान परेशान होता है कहता कि इसको मैंने मारा मगर वे कहते हैं कि हमने मारा साहब उसको उसके पैसे देते है, नौकर घर को चला जाता है ।

डाऊ का स्वांग

देहाती समाज, कई सामाजिक कुरीतियों का शिकार हो चुका था । अन्धविश्वास की बेडियों में जकड़े हुए लोग, पाखंडी तांत्रिकों के चुंगल में फस जाते थे । झाड़ फूंक,

बलि प्रदान करे रोगों का इलाज करने में लोगों का विश्वास था । लोगों की इसी कमजोरी का फायदा उठाया करते-झाड़-फूंक करने वाले । डाऊ के स्वांग में बाण्ठडा कलाकारों ने जिस ढंग से इस कुरीति का पर्दा फाश किया है वह काबिले तारीफ है। इसमें जहां लोगों का मनोरंजन किया जाता है वहीं ढोंगी साधुओं के चक्र से बचने के लिए भी आगाह किया जाता है ।

गद्दियों का जीवन मायावरी में कटता है। कभी पहाड़ तो कभी मैदान, भेडों के लेकर एक जगह से दूसरी जगह भटकते रहते हैं । इस दौरान इनके साथ कभी-2 इनका परिवार भी साथ होता है । डाऊ के इस स्वांग में एक गद्दी की गद्दनियों के पेट में दर्द होने लगती है । गलती से वह चेले के चक्कर में पड़ जाता है । वह चेला उन्हें ठीक करने के बदले में काली भेड़ की मांग करता है । पहले तो गद्दी मान जाता है मगर उनके ठीक होते ही वह मुकर जाता है । चेला मन्त्र शक्ति से उसे अन्धा बना देता है और गद्दनियों को अपने साथ ले चलता है । अन्त में गद्दी माफी मांग कर अपनी जान छुड़ाता है। डाऊ का अर्धा-धूर्त तान्त्रिक से लिया गया है, जो अपनी मांग मनवाने के लिए जहां गद्दी को अन्धा कर देता है । वहीं गद्दनियों को सम्मोहित करके अपने साथ ले चलता है । डाऊ के स्वांग में एक गद्दी और दो गद्दने पण्डाल में प्रवेश करती हैं--गद्दी नृत्य करता है जबकि गद्दनें पेट दर्द का अभिनय ।

गीत

लछो गद्दनी मुइये चम्बा नेडड़े की दूर,
लछो गद्दनी मुइये चम्बा नेडड़े की दूर--2

गीत के बन्द होते ही गद्दनें पेट दर्द से कराहने लगती हैं--"हुण मुई ओ गदिया-मेरे पेटा लगी पीड़"गद्दी उन्हें सांत्वना देता है "हुण केरना लाज तुसां दा, कोई चेला नी दिखदा" ।

सूत्रधारः- ओ मित्रा केथी ते आया, केथी जो चलीरा ?
गद्दीः- मैं लौहला ते आया, चम्बे जो चलूरा ।
सूत्रधारः- यो कुण ही सौगी?
गद्दीः- यारा यो मेरी गद्दनियां ही, मिजो कने सौगी रैह्न्दी ।
सूत्रधारः- तेरी भेड़ा बकरी केथी ही ।
गददीः- भेड़ा ता गाहां चली गइयो, कने बकरीयां पचांह रही गयी।यारा मेरा इक कम करी दे ।
सूत्रधारः- क्या काम?
गददीः- यारा मेरी गद्दनियां बमार होई गयी इना दा लाज केरना था, कोई चेला

ता दसी दे मेरा भाई ।

सूत्रधारः- देखुं भला कोई चेला मिल्हंगा ता लई आऊं ।

चेला पण्डाल में प्रवेश करता हैः-

सूत्रधारः- ये महाराज, आप कौन हैं ? क्या करते हैं आप ?

चेलाः- मैं चेला (तान्त्रिक) हूं किसी को भूत लगा हो या देवता हो सबका ईलाज करता हूं ।

सूत्रधारः- यहां एक गद्दी आया है, उसकी गद्दनियां बिमार हैं आप उनका ईलाज करो ईलाज

चेलाः- गद्दी बात करके मुकर जाते हैं । मैं ईलाज का सामान पहले लूंगा ।

स।त्रधारः- ठीक है माहराज! वह आपको दे देगा, बड़ी मुश्किल में है ।

चेलाः- चलो, जै शिव शम्भू ।

सूत्रधार उसे गद्दी के पास ले जाता है । "ओ मित्रा यह लै चेला लई आया हां करी लौआं गल बात तुसे हुण ।

गद्दीः- कुथू हन चेला, मिजो मिलाई देंओ । सूत्रधार दोनो की बात चती करवाता

गद्दीः- मेरी गद्दणिया दा लाज करी दे ओ चेला जी !

चेलाः- लाज ता मैं करी देंदा, पर इसके लिए काली भेड़ लगेगी, बात पहले पक्की कर लो ।

गद्दीः- ठीक है माहराज लाज केरी देओ, मैं देयी दिंग्हा काली भेड़ । चेला झाड़-फूंक करने लगता है । मन्त्र पढ़ता खेल आती है । धीरे-2 गद्दनिया ठीक होने पर अपना ईनाम मांगता है और गद्दी साफ मुकर जाता है ।

गद्दीः- नी यारा मैं नी दिंदा, भेड़ नी दिंदा, गद्दनियां अपू ठीक होई गयी ।

चेलाः- अभी भी मान जा और भेड़ दे दे ।

गद्दीः- मै नी दिंदा ।

चेलाः- ठीक है, देखता हूं कैसे नहीं देता । वह फिर से मन्त्र पढ़ता है । गद्दी की आंखो की रोशनी चली जाती है उसे कुछ नहीं दिखायी देता है वह रोने व चिल्लाने लगता है ।

गद्दीः- मेरी हाखी फटोयी गयी, मिंजो कुछ नी दिसदा ।

सूत्रधारः-ओ मित्रा, गद्दणिया जो लई गया चेला ।

गद्दीः- रोकी दे यारा हाऊं देयी दिगा भेड़ जो, रोकी दे चेले जो ।

सूत्रधारः-ये महाराज वह मान गया अब उसे ठीक कर दो ।

चेला गददी को ठीक कर देता है और गददनियों को उसे वापिस लौटा देता है ।

-:=:-

लोक नाट्य भगत में भाषिक - संवाद

डॉ० गौतम शर्मा व्यथित

"लोकनाट्य" शब्द पाश्चात्य शब्द "फोक ड्रामा" (FOLK DRAMA) का समानान्तर है। लोकनाट्य शब्द लोक तथा नाट्य शब्दों के योग से बना है । 'लोक' शब्द साधारण शिष्ट प्रभावों से अछूते, परम्परा में जीने वाले जनसमूह का सूचक है । 'नाट्य' शब्द नट् धातु से व्युत्पन्न होने के कारण भावों का बोधक है । अतः लोकनाट्य को लोक द्वारा अनुभूत भावनाओं का परम्परागत अनुकरण कहना असंगत नहीं, जिसमें अनुभूति एवं प्रतीति की मौलिक एवं तीखी व्यंजना होती है । यह एक ऐसी लोक-रन्जनात्मक विधा है जिसके माध्यम से जन साधारण का परिवेश, पात्र एव घटनाऐं मुखर होती हैं, सामाजिक विषमताओं के विरेचन को दिशाऐं मिलती हैं ।

नाट्यकला का अंकुर लोकजीवन की भावभूमि से प्रस्फुटित होता है । अतः शास्त्रीय नाटक लोकनाट्यों की पीहड़ी में आते हैं । इनमें आधार-आधेय या जनिता-जनित का सम्बध है । इसकी परम्परा आदिकालीन है[1]। नाट्यशास्त्र तथा दशरूपक में निरूपित नाट्यसिद्धान्तों के आधार भी इनसे पूर्व सैकड़ों वर्ष पहले लिखे गये वे असंख्य नाटक हैं जो विकास की सीमा तक पहुंचे हुए थे । ये नाटक ईसा से सैकड़ों वर्ष पूर्व अपने चतुर्मुखी विकास के साथ व भारत के गौरव को बढ़ा रहे थे । रास और स्वांग ही भारतीय नाटकों के जन्मदाता हैं जो तत्कालीन जनरुचि के अनुकूल थे। उनमें व्यंगात्मक संवादों की अपेक्षा संगीतात्मकता अधिक थी । भारत की सभी प्रादेशिक भाषाओं के इतिहास में इन रास और स्वांगों को लोकनाट्यों का प्रभावोत्पादक माध्यम माना गया है । इस प्रकार के नाटक ड्रामाटिक पौयट्री (Dramatic Poetry) के नाम से कहे गए हैं जिनकी रचना कवितात्मक थी[2]।

अब्बुल फजल ने आयनेअकबरी में जो विवरण दिया है उससे ब्राह्मणों की कीर्तन परम्परा और भगतों की भगत परम्परा का संकेत मिलता है[3]। भगत में वहुरूपियाए

1. नाट्यकला मीमांसा, पृष्ठ 16
2. श्री रंगाचार्य, इंडियन थियेटर, पृष्ठ 69
3. रामनारायण अग्रवाल, सागीत, वर्ष 1976

की प्रधानता थी । हास-परिहास मुख्य तत्त्व था । भगत के ऐतिहासिक पक्ष में बात करते हुए अनेक विद्वान् ऐसे मत के हैं कि भगतिए प्राचीन नट परम्परा के कलाकार रहे होंगे तथा मन्दिरों में आयोजित उत्सवों में लोकरंजन करना इनका काम रहा होगा। औरंगजेब के काल में मन्दिरों, ठाकुरों मूर्तियों के साथ ये भी निष्कासित हुए और 'घुमा -क्कड़ बनकर मार्ग में अपनी कला का प्रदर्शन करके अपनी रोटी-रोजी कमाने लगे । नौरंगे इश्क में भी 'भगत' सम्बन्धी जिक्र मिलता है । इस ग्रंथ में बारहवीं हिजरी के भगतवाज़ "तकी" का उल्लेख मिलता है । सुप्रसिद्ध संगीतकार रामचन्द्र मौंगा मथुरा के पेशकार 'भगवतिप्रसाद कायस्था' को भगत का रचयिता मानते हैं । नाट्यशैली भगत का प्रमुख केन्द्र मथुरा और हथारस है । भगतिये या भगतवाज़ किसी का स्वांग/वेष/ बनाकर उसी के अनुसार गति- विधियों से अभिनय द्वारा दर्शकों को प्रभावित करते। अतः भगत का कलात्मक स्तर ऊंचा था । अभिनय के तत्त्व अधिक उभरे थे। गायन, हास-परिहास और मसखरापन इसकी सरसता थे । अतः रामनारायण अग्रवाल सन् ई0 1800 के उपरान्त भगत का वर्तमान स्वरूप मानते हैं । हिमाचल में कांगड़ा, चम्बा, हमीरपुर के क्षेत्रों में भगत परम्परा की अधिकता रही है । पूर्वकाल में इसका स्वरूप भद्देष अधिक था । हरिजन जाती के कलाकार ही इस परम्परा के प्रसारक एवं प्रचारक थे । अनपढ़ समाज में अपढ़ कलाकार अपनी भाषिक स्वतंत्रता से संवाद घाढते और मौके के मुताबिक भद्दे शब्दों का प्रयोग और अभिनय का प्रदर्शन करते इसी में उनको वाह-वाह मिलती । भगत का मंचन दो भागों में बंटा था ﴾1﴿ रास तथा ﴾2﴿ स्वांग । छठे दशक मे होशियारपुर की ड्रामा मण्डली का इस क्षेत्र में आना इसके तीसरे पक्ष को जन्म दे गया । वर्तमान में इसके तीन रूप है 1. रास, 2, स्वांग तथा ड्रामा । इसमें रास का स्वरूप रासलीला सदृश है परन्तु उस पर लौकिकता का प्रभाव है । कृष्ण-मनसुखा सवादों में मनसुखा किसी भी संवाद-शिष्टता का पालन नहीं करता । हर बात को उल्टा-सीधा बनाकर हास्य एवं व्यंजना की सृष्टि करता है। ये तीन पक्ष कांगड़ा के शाहपुर, ज्वाली, त्रिलोकपुर, बैजनाथ-पंचरूखी आदि क्षेत्रों में ही परम्परित हैं । बालकरूपी, ज्वालामुखी डाडासीबा आदि क्षेत्रों में स्वांग तथा ड्रामा का अधिक प्रचलन है । वहां लीला पक्ष गौण है ।

भगत का प्राण तत्व - संवाद नाट्य का प्रस्तुतिकरण परम्परा एव वर्तमान का समन्वय लेकरके चलता है। लोक रंग (Folk Theatre) अपने स्वभाव में नित्यनवीन

होता है, एकदम सजरा, ताज़ा । भले ही उसका प्रदर्शन बार-बार क्यों न देखा हो। उसमें रसानुभूति सदैव एक जैसी मिलती है । उब, नीरसता का प्रश्न ही नहीं उठता। यह विशेषता कथानक की अपेक्षा संवाद-कुशलता पर निर्भर रहती है ।

संवाद कुशलता के कारण ही लोनाट्यों में कथा के भीतर कथा या प्रसंग के अन्तर्गत प्रसंग स्वतः आ जाता है और अपनी कार्य एव भाव भूमि से दर्शकों को प्रभावित करता अचानक गुम हो जाता है । प्रसंग के बीच प्रसंग इस प्रकार गुथा रहता है कि कभी ऐसा महसूस ही नहीं होता कि मंचित हो रही कथा या लीला कहीं से टूटी हो । इसी कला-कुशलता के सहारे पौराणिक प्रसगों को भी इस ढंग से प्रस्तुत किया जाता है कि वर्तमान के करीब लगते हैं ।

भगत लोक नाट्य प्रस्तुति के तीन चरण हैं - कृष्ण लीला प्रसंग, नक्कल या स्वांग तथा ऐतिहासिक-सामाजिक नाटक । इन तीनों चरणों पर सवादों का स्वरूप भावानुरूप होता है । वास्तव में "भगत नाट्य" का पात्र "मनसुखा" ही संवाद कुशलता का मूलाधार है । वही ऐसा पात्र है जो हर प्रसंग को, हर संवाद को विपरीत दिशा में ले जाता, हास्य रसोद्रेक करता है, स्थितियों पर व्यंग्य कसता है। कथा को आगे बढ़ाता है । उसी की संवाद कुशलता के कारण संवाद से संवाद जन्म लेते चले जाते हैं । इसी कुशलता के कारण वह मूल कथा प्रसंग से हट कर समाज, व्यक्ति, वर्तमान से जुड़ता पुनः मूल कथा प्रसंग पर आ जाता है ।

व्यक्ति एव सामुदायिक रचनाएं लोक नाट्य परम्परा में मौखिक हैं । इसकी पाण्डुलिपि नहीं होती । इनके संवाद तथा कथानक राह चलते, हुक्का-बीड़ी सुलगाते, गप्प मारते, विश्राम करते जोड़े जाते हैं, सोचे जाते हैं, परस्पर समझे जाते हैं । ऐसे समुदायों या जातियों का चिन्तन व्यंजनात्मक है । संवादों में यह कुशलता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है । प्रसंग चाहे कितना घिसा-पिटा हो, लम्बा या संक्षिप्त हो, आंखें निंदिया क्यों न रही हों, संवादों का चटपटापन, अवसरानुकूलता, दर्शक समाज को बरबस आकर्षित करता है । प्रसंग की स्थितियां साकार हो उठती हैं । भगत में न तो दृश्य सज्जा है न रूप सज्जा, बस है तो केवल संवाद-कुशलता जो सभी अभावों को पूरा करता है । संवादों के प्रभाव का मूल कारण है भाषिक प्रचार, भाषिक सम्मोहन, जो व्यन्जना में संगुंफित रहता है ।

नाट्य में नृत्य, अभिनय तथा संवाद तीनों का महत्व है । इन्हें परस्पर एक दूसरे को पूरक भी कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं । नाट्य की मूल संवदेना संवाद में ही निहित है । यदि संवाद न हो तो अभिनय तथा नृत्य की सार्थकता सिद नहीं हो सकती । अभिनय-प्रणाली में पांच अंगों का महत्व है --

1. मुख अभिनय (Justure)
2. शारीरिक भंगिमा (Posture)
3. गति (Speed)
4. वेग (Velocity)
5. वाणी (Speech)

यदि गहनता से विचारा जाए तो ये सभी अंग भाषिक रूप पर आधारित रहते हैं । भाषिक संवेदना ही (Justure, Posture, Speed, Velocity) को ग्रहणीय, संवेदनीय बनाती है, इसी से संप्रेषणीयता बढ़ती है । लोक नाट्यों में निहित प्रभाववाद ((impression) भड़ैतीपन (Farcial) प्रहसनात्मकता (Burlesqueness)आदि विशेषतायें संवाद-लालित्य के कारण ही परम्परित मिलती हैं । मंच से सम्प्रेषित संवाद दर्शक की प्रतिक्रया से तीव्रता पाते हैं । सेवाद कई बार लम्बे और छोटे (अवधि में) भी हो जाते हैं, प्रसंग को लेकर केई बार प्रसंगेतर प्रंसग चर्चा भी शुरू हो जाती है जिसमें "भगतिया" सामयिक समझ एवं अनुमान से पते की बात भी कर जाता है, दर्शकों पर व्यंग्य कसने मैं भी हिचक महसूस नहीं करता । नाटक में जो "थियेट्रीकल एक्शन" की बात की गयी है उसमें भगत में थियेट्रिकली रियल (Theatrically Real) होने की बात शतशः सिद्ध होती है । भगत लोकनाट्य उन लोगों का नाट्य है, उन द्वारा अभिनीत नाट्य है, उन द्वारा सोचा-विचारा घढ़ा गया नाट्य है जो समाज में अपना अलग स्थान रखते आए हैं, परम्परा में जीते आ रहे हैं, आधुनिकता से अछूते रहे हैं, शिक्षित मानसिकता से अभी दूर हैं। अतः इसके मंचन में वास्तविकता (Reality) अधिक है, वर्गगत दयित भावनाओं, आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति भी ।

वाचिक अभिनय को नाट्य का प्रधान अभिनय माना गया है । मनोभावों की अभिव्यक्ति तो सात्विकादि अभिनयों द्वारा हो सकती है परन्तु उन्हें पूर्णता और सार्थकता वाचिक अभिनय के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है । भगत लोकनाट्य की संवाद संरचना या परम्परा के सन्दर्भ में यह कथन पूर्णतया सार्थक लगता है। भगत में सम्वाद ही मूल तत्त्व है। सम्वाद का सौंदर्य भाषिक प्रयोग पर आश्रित रहता है। संवाद के भाषिक तत्वों में (1) विशेष शब्द-प्रतीकार्थक शब्द प्रयोग, (2) मुहावरा लोकोक्ति प्रयोग (3) व्यावहारिक शब्दावली प्रयोग । (4) दैनन्दिनी से जुड़े शब्द प्रयोग प्रचुरता से मिलते हैं । कुछ रूप देखिये । भगत के मनसुख या विदूषक की बात जब कोई नहीं मानता है या उसकी नहीं सुनता है तो वह हाथ में लिए डण्डे को दिखाते हुए कहता है-

संवाद रूप दिखया है व्यांग । जे फसंगा तां जबरे जो हक पाणा पोणी (सभी हंसते है

नटी को खिझाते हुए -- मनसुखा

-हाय वो मेरिये पिलपिलिये !
-हाय वो मेरिये बोबडिये !
-हाय वा मेरिये रसभरिये ! लसपसिये ! §यदि बात और बढानी हो तो§ -हाय वो मेरीये जबरैठे ! इत्यादि ।

भगत में व्यंग्योक्तियों की भरमार होती है । हो भी क्यों न ! मनसुखे की भूमिका होती भी तो हास्यस्पद है, वेशभूषा भी हास्य रस बिखेरती है । वह हर विषय सम्बन्धी संवाद को विपरीत भाषा एवं अर्थ में बोलता है वैसे ही अन्दाज और मुद्रा में जिसे सुनते ही श्रोता खिलखिला कर हंसने लगता है । मनसुखे की संवाद-कुशलता नींद और थकावट को काफूर कर देती है । शिष्ट एवं सीधे संवाद में भी वह जो कहना चाहता है, कह जाता है, जिस ओर इशारा करना चाहता है, कर जाता है । कृष्ण-लीला प्रसंग में मंच पर मनसुखे की भेंट सखी §गोपी§ से होती है ।

मनसुख- सखी ! तू कहां गयी थी ?
सखी- वे मनसुखे । मैं गई थी जमना के घाट ।
मनसुख- §आश्चर्य से § जमना के घाट !
सखी- हां-- हां जमना के घाट ।
मनसुख- ओए ! जमना दा घराट तां कदूं दा सुक्का पिया । अजकल ता मेरा ही चल्ला दा। §हाथ में लिए वक्रदण्ड को हिलाता-घुमाता हुआ§ बग़ैर पाणियें, बग़ैर नाहली§नाली§ घरडें-घरड, घरडें-घरड । §उसकी ऐसी हरकत देखता समूचा दर्शक समाज हंसता नहीं थकता§।

एक और उदाहरण देखें:- प्रसंग है-मंच पर श्री कृष्ण घूम रहे हैं । वे आकुल-व्याकुल इधर-उधर तलाश करते हैं परन्तु उसका सखा "मनसुख" दिखाई नहीं देता । वे उसे आवाज़ देते पुकारते हैं:-
श्री कृष्ण -ऐ जी ! मनसुखया ! sss
मनसुख -§नैपथ्य से, ज़ोर के साथ§ तेरा मन किआं दुःखया ?
श्री कृष्ण -§स्वर बनाकर§ मनसुख लाल जी ! sss
मनसुख -§पतले स्वर में§ तेरा होया बुरा हाल जी ।
श्री कृष्ण -मैं तुझे मोटर भेजू ?
मनसुख -§स्वर बनाकर, ज़ोर से § जी ! मैनी पीन्दा ।
श्री कृष्ण - क्या?

मनसुख -जी, बोतल । §सभी हंसते हैं§ ।
श्री कृष्ण -मैं तुझे लारी भेजूं ?
मनसुख -जी, मत भेजदे ।
श्री कृष्ण -क्यों ?
मनसुख -§स्वर बनाकर§ जी मैं जबरा होई गिया ।
श्री कृष्ण -क्या ?
मनसुख -§बनता हुआ§ लाड़ी ।
श्री कृष्ण -§नैपथ्य की ओर बढ़ते हुए§क्या मैं तुझे घोड़ा भेजूं?
मनसुख -जी ! भेजी दिया पर पौ ते घट नी होऐ ।
श्री कृष्ण -क्या ?
मनसुख -§ज़ोर से पकौड़ा।§सभी हंसते§ ।

इसी के साथ मनसुख प्रकट होकर श्री कृष्ण जी के पास आता, बन्दगी की मुद्रा में कहता है-

मनसुख -पां बन्दे महाराज ।
श्री कृष्ण -§आशीष मुद्रा में§ मनसुखे ! कल्याण हो ।
मनसुख -§पीछे हटता हुआ§ कनैन तुसां ही खा । मिञ्जों नी है मलेरिया ।
श्री कृष्ण -मनसुखे मैं तुझे आशीर्वाद देता हूँ ।
मनसुख -झट दई दिया, कुथू है?
श्री कृष्ण -क्या ?
मनसुख -खीरा दा बाट ।
श्री कृष्ण -मनसुखे ! मैंने तुझे इसलिए नहीं बुलाया कि तू यहां आकर नकलें उतारे।

मनसुख -तब फिर क्यों बुलाया है ?
श्री कृष्ण -§उसे समझाता हुआ§ सुन ! पांच-सात सखियां जमना किनारे----
मनसुख -§बात काटता हुआ§ पंजसत सटियां जम्रा§नदी§ किनारे ।
श्री कृष्ण -§समझाते हुए§ सटियां नहीं, मनसुखे ! सखियां ।
मनसुख -§समझने की मुद्रा में§ अच्छा । अच्छा पंजसत मच्छियां कनें लूण लाई चटियां
श्री कृष्ण -§डांटते हुए§ मनसुखे । तुझे जमना के घाट पर पहरा देना पड़ेगा ।
मनसुख -§डरता हुआ, मना करता§ जमना दें घराटें मैं नी दिण्दा पहरा ।
श्री कृष्ण -तुझे तनखाह डब्बल और रोटी-पाणी फ्री मिलेगा ।
मनसुख -§आश्चर्य से §डब्बल तनखाह कने रोटियां पर घी मिलेगा । हंसता है-खी-खी §दर्शक समाज भी हंसने लगता है§।

आशु-संवाद कुशलता की दृष्टि से लीला प्रसंग में "छल्ला-मुंदरी लीला" भी बेमिसाल है । कथानक 'चन्द्रावल' गूजरी के मान को तोड़ने से सम्बद्ध है । चन्द्रावल का हार, छल्ला, मुन्दरी खो गए हैं । घर जाए तो कैसे ? कोई पुछेगा कि तेरा अमुक आभूषण कहां है तो क्या उत्तर दूंगी? कोई इस घटना को लेकर क्या कहेगा? इसी असमंजस में थी कि मार्ग में मनसुखे से भेंट हो जाती है । चन्द्रावल और उसकी सखी मनसुख से अपनी समस्या बता कर कान्हा से आभूषण ला देने का आग्रह करती है । परन्तु वह कहां ऐसे मानने वाला । जब वह उनसे बतियाना चाहता था तब तो वे मान के कारण उससे मुंह नहीं लगातीं। आज तो उसकी चान्दी है, खूब खिजाएगा वह भी । वे उसे जितना मनाती हैं उसकी अकड़न उतनी बढ़ जाती है । वह सखी से एक मीठा गाना सुनाने को कहता है । कभी निकट आकर मीठी-मीठी बातें करने को कहता है। आज तो उसने भी मन की सारी बातें मनवाने की ठान ली है । गोपिय से मीठी-चुरीली -रसीली बातें करके वह उनसे चिन्ता का विषय पूछता है । इस दृश्य में मन सुख-गोपी तथा मनसुख-श्री कृष्ण से जो संवाद होता है उसका कुछ अंश देखिए-

सखी -वे मनसुखया !

मनसुख -हां वे मेरिये किशमिशे !

सखी -वे असां लुटिया गईयां ।

मनसुख {आश्चर्य मुद्रा में} अच्छा ! तुहाड़े पुच्छआडे दियां बसूटियां पुटियां गईयां। {सभी हंसते हैं} ।

सखी -वे नहीं । असां लुटियां गईयां ।

मनसुख अच्छा । कुन्ही तुहाड़ियां जुतियां चुकि लिआं ।
{सखी उसे धफ्फा मारती है, सभी हंसते हैं}

सखी -वे स्हाढ़ा हो गिया नुकसान ।

मनसुख -ताहीं फिर दिया बणी ने साहन ।

सखी -वे स्हाढ़े पै गिया डाका।

मनसुख -{आश्चर्य से} क्या बोल्या?

सखी -डाका ।

मनसुख {हंसता है} ही ! ही ! ही !

सखी -वे की गह्ल ?

मनसुख -मेरा करा मिठा मुंह ।

सखी -क्यों ?

मनसुख -तेरे घर होया काका। ह्वेया न!

यह सुनकर सखी अपना सा मुंह लेकर रह जाती है । क्रोध में उसे धफ्फा मारती है, सभी हंसते हैं ।

गोपी (चन्द्रावल) से इस प्रकार हास-परिहास करने के बाद वह उनके आभूषण ला देने का वायदा करके श्री कृष्ण जी के पास जाता है । श्री कृष्ण जी अकेले टहल रहे हैं । वह उन्हें बन्दगी करके अपने आने का आशय बताता है । श्री कृष्ण जी उसे समझाते हैं कि आभूषण लौटाने से तो हम पर चोरी का दोष लगेगा । अतः आभूषण तो नहीं लौटाऊंगा, हां कीमत अदा कर देंगे । इसी प्रसंग में मनसुख कभी कृष्ण के पास तो कभी गोपी के पास जाता है । दोनों का संवाद लेता-देता अपने मजे करता है । देखिए-

मनसुख भगवान जी ! आपके पांव लगता हूं ।

श्री कृष्ण -हा भैया मनसुखे ! सुखी रहो ।

मनसुख -(घूरता हुआ) महाराज ! असीं सुखी रहें जां दुखी । तुसीं मारी चल्लो हत्था मिठेयां चौलां की । (सभी हंसते हैं)

श्री कृष्ण -मुस्कराते हैं ।

मनसुख -भगवान जी! होर ठीक-ठाक है ?

श्री कृष्ण -(हास्य मुद्रा में देखते हैं)

मनसुख -(विनय भाव से) मैं आपके दर्शन करने चला आया ।

श्री कृष्ण -हां ! हां ! मनसुखे च्छा किया ।

मनसुख -भगवान जी ! तुसीं बुरा न मन्नो ता इक गल पुछणा चांहदा।

श्री कृष्ण -हां । हां । भैया मनसुख पूछो ।

मनसुख -आप जमना कनारे गए थे ?

श्री कृष्ण -(सोचकर) हां, एक बार ।

मनसुख -हां जद्याड़ी एह गटर-मटर होई थी । सभी हंसते हैं ।

श्री कृष्ण -मनसुखे ! हम किसी गैर के पास क्यों जायें?

मनसुख -महराज । आपके पास सखियों का छल्ला तो नहीं ?

श्री कृष्ण -हां मनसुखे । सखियों का छल्ला तो हमारे पास है पर देंगे नहीं। हम तो चोर कहलायेंगे । हम कीमत अदा कर देंगे ।

मनसुख -(बनता हुआ) हां महाराज! तुहाड़े पास किस चीज का घाटा है ।

श्री कृष्ण -हां मनसुखे !

मनसुख -(धीरे से उनके निकट आकर) हा तुहाड़ें तमाकुए दा बी(बीज) भी हुंग भला? (सभी हंसते हैं)।

श्री कृष्ण -मनसुखे !

मनसुख -हां भैया !

श्री कृष्ण -भैया मनसुख ! मज़ाक नहीं करते ।

मनसुख -असां कुत्थू करदे?

 सोमसी

श्री कृष्ण -§प्रश्न मुद्रा में§ क्या?

मनसुख -§बनता हुआ टेढा हो कर§ मजाक । §सभी हंसते हैं§

श्री कृष्ण - मनसुखे ! मेरी तबीयत ठींक नहीं ।

मनसुख -हां महाराज ! ठीक होई कदूं ।

श्री कृष्ण - क्या?

मनसुख -तुहाड़ी नीत, होर क्या?

श्री कृष्ण -नहीं मनसुख, तबीयत---तबीयत ।

मनसुख -अच्छा । तबीत ।

श्री कृष्ण -हांऽ।

मनसुख -इक पाऽ §उपाय§ करा ।

श्री कृष्ण -बताओ मनसुखे, क्या करूं ।

मनसुख -राती सौंदिया बारिया जफ्लोटा लिया ।

श्री कृष्ण -फिर?

मनसुख -§अष्टावक्र मुद्रा में§ फिरी क्या ?

श्री कृष्ण -तो भी, बता न ।

मनसुख -पचांह दिया टूटिया खुलणे दी देर, सब साफ-सरड़ो-सरड़, सरड़ो-सरड़।
§सभी हंसते हैं§

श्री कृष्ण -मनसुखे! तुम बड़े रसिया हो ।

मनसुख -§बात काटता हुआ§कुदिया बछिया?

श्री कृष्ण -§समझाते हुए§ बछिया नहीं, रसिया ।

मनसुख -§समझने की मुद्रा में§ अच्छा । मैं सोचया कोई खोहली लई गिया तुहाड़िया बछिया §सभी हंसते हैं§।

श्री कृष्ण -मनसुखे !

मनसुख -महाराज !

श्री कृष्ण -मनसुखे ! तुम मेरे सखा हो ।

मनसुख -§बनता हुआ§ क्यों नहीं महाराज ।

श्री कृष्ण -एक बात पूछूं ।

मनसुख -पुच्छो महाराज । इक छड्डी दस पूच्छो ।

श्री कृष्ण -छल्ला किस सखी का है?

मनसुख -किस का?

मनसुख -§बनकर/ मटक कर§ उसी का, गोल मटोल चकोर का ।

श्री कृष्ण -§आश्चर्य से§ चन्द्रावल का !

मनसुख - हां महाराज । बडी चन्द्री है ।

श्री कृष्ण -चन्द्री नहीं, चन्द्रावल !

मनसुख -§मुंह बनाकर§ नीं महाराज ! चन्द्री क्या जन्द्री समझा ।

श्री कृष्ण -नहीं मनसुखे ।

मनसुख -तिसा दी जन्द्री जिसजो पढदी, सः छुड़कदा नी । §सभी हंसते हैं§

श्री कृष्ण -मनसुखे ! ऐसा ऊटपटांग नहीं बोलते ।

मनसुख -महाराज !

श्री कृष्ण -वह मेरी बात भी करती हैं ।

मनसुख -कौन ?

श्री कृष्ण -सखियां ।

मनसुख -§ठाठी मारता हुआ§ मखिया दिन रात भुण-भुण । मेरे ता कन्न बोंजले होई गियो §कान आगे करता है§ ।

श्री कृष्ण -मक्खिया नहीं सखियां ।

मनसुख -§समझता हुआ§ अच्छा । सखियां ।

श्री कृष्ण -हां मनसुखे । सख्यिा ।

मनसुख -महाराज। मैं क्या करां? कन्ना दे ढप्पण चढ्यो, होरे दा होर सणोंदा ।

श्री कृष्ण -अच्छा । मनसुखे ! जाओ चन्द्रावल से छल्ले की बात करो ।

मनसुख -क्या ? ? ?

श्री कृष्ण -छल्ले की बात करो ।

मनसुख -§मटकता हुआ§ कहने की बात क्या महाराज अज्जे दी करदे, हुणी करदे अभी-अभी ऐसा कहता, मटकता उछलता अलाव के चक्कर काटता सखियां की तरफ सरक जाता है ।

कृष्ण-मनसुख संवाद इसी लय, सरसता, जिज्ञासा तथा व्यंग्य-विनोद से भर-पूर भाषिक जादू करता दर्शक समाज पर सम्मोहनी प्रभाव फैलाता इस लीला प्रसंग के कथानक को चरम परिणति तक पहुंचाता है । जगत-ख्यात प्रसंग लोकनाट्य के मंच पर लोक धारणा के अनुरूप ढलता नित्य नये भाषिक स्वाद के कारण उस धाम के सदृश है जिसमें प्रयुक्त सामग्री तो एक जैसी होती है परन्तु रसोईये §पकाने वाले§ की प्रक्रिया कुशलता से उसमें स्वाद भिन्नता रहती है ।

भगत का प्रथम चरण लीला परक है जिस पर ब्रजमण्डल की रास परम्परा तथा भाषा का प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है । रास में संवाद-रूप गेय हैं । ऐसी ही परम्परा भगतियों ने भी पकड़ी है अपने लहजे के साथ, अपनी भाषिक-कुशलता के साथ

जिसका अपना निजी प्रभाव और आनन्द है । कृष्ण-सखी§चन्द्रावल§ के संवाद में कुछ रूप देखिये-

सखी -बंसी का बजाना छोड़ दो अजी ।
नन्द महर के लाल ।
श्रीकृष्ण -बंसी का बजाना कैसे छोड़ूं?
अरी प्यारी सखी मैं आज ।

एक अन्य प्रसग में चन्द्रावल-कृष्ण-संवाद रूप देखिये । श्री कृष्ण चन्द्रावल सखी से माखन मांगने की मुद्रा में-

श्री कृष्ण -सखी ! थोडा सा माखन दीजो ।
प्यारी थोड़ा सा माखन दीजो ।
भूख लगी अति भारी ।
प्यारी ! थोडा सा माखन दीजो ।
सखी -माखन तुझ को तब मिले,
जब गा कर नाच दिखा ।
बंसी मधुर बजाईके,
कोई मीठी तान सुना ।
बंसी वालेया, कोई मीठी तान सुना ।
श्री कृष्ण -कहां हमरी गौऐं सखी, कहां हमारे बछड़े ?
भूख लगी तन सीजो है री सखी,
थोडा सा माखन दीजो
सखी -§मुस्कराती है, चुप रहती है । इशारे से इन्कार करती है§
श्री कृष्ण -सखी तू बड़भागिनी, कौन तपस्या कीनो ।
त्रैलोक के मालिक आए तेरे द्वार ।
सखी थोड़ा सा माखन दीजो ।

भगत में "चम्बोला" शैली का प्रयोग भी रहता है । एक रूप यूं है-

श्री कृष्ण -पतुआ तोड़न मैं गिया गोकल के धाम ।
छल करके सखियां गईं, चन्द्रावल के धाम ।।

इसी प्रकार जब श्री कृष्ण वेष बदल कर §स्त्री रूप धर कर§ मनसुखे के साथ चन्द्रावल के बरसाने मे उसे हरने जाते हैं उस समय भी कृष्ण-चन्द्रावल मध्य गेय संवाद होते हैं जो भाषिक-लालित्य एवं संगीत की दृष्टि से ब्रज रास प्रसंगों के समानांतर हैं । ऐसे दृश्यों में पूरा ब्रज मण्डल साकार हो उठता है । कृष्ण लीला के ख्यात प्रसंग

चलचित्र सदृश मुखर होने लगते हैं ।

स्वांगों में दैनिक जीवन से जुड़ी समस्याओं के प्रसंग व्यंग्य-विनोद शैली में अभिनीत केए जाते हैं । सीधे और सपाट संवाद परस्पर जातीय गुण-अवगुण मुखर होने लगते है । परन्तु भाषिक कुशलता और हास्यपूर्ण व्यंग्य ऐसा जादुई प्रभाव रखता हैं कि हम अपनी आलोचना सुन कर स्वयं ही आनंदित होते हैं । किसी के प्रति कोई मलाल नहीं, कोई गिला-शिकवा नहीं मुकदमा नहीं ।साहित्य जीवन की व्याख्या है । लोकनाट्य भगत इस कथान को साकार करता है ।

नाट्य एक दृश्य तथा श्रव्य व्यापार है।दृश्यात्मकता की साकारता, उसका प्रभाव तभी सम्भव है जब श्रव्यता का पूर्ण प्रभाव एक सफल बिम्ब लेकर मस्तिष्क तथा हृदय में उतर आए । भगत में प्रयुक्त भाषा-स्वरूप एक तो पूर्व निश्चित नहीं है, दूसरे यदि यह परस्पर समझा या घढा भी होता है तब भी परम्परा में मौखिक होने के कारण सिथाति अनुरूप, पात्र अनुरूप, अभिनय अनुरूप परिवर्तनशील होता है । यह परिवर्तनशीलता या स्थिति अनुरूपता भगतियों की मानसिकता और दर्शक समाज के बौद्धिक स्तर या सामाजिक गठन के मुताबिक ही होती है । यदि भगत का मंचन ग्रामीण मंच पर निम्न स्तरीय दर्शक समाज में होगा तो भाषा पूर्णतया आंचलिक, असभ्य और भदेस हो जाती है । वहां मंच तथा दर्शक के मन पर किसी प्रिकार का अंकुश नहीं होता । यहां तक इस भाषा में. गाली-गलोच, गुप्तांगों के नाम, यौनिक क्रियाओं का अभिनय सब खुला होकर आता । परन्तु शिक्षा -प्रसार एवं सामाजिक विकास के प्रभाव से अब ऐसी खुली, बेपर्दा साफ-साफ भाषा का प्रयोग नहीं होता । भाषा का स्परूप मूलतः व्यन्जक होता है । मुहावरेदार,चटपटा मसालेदार। अतः शब्दों की तोड़-मरोड़ जैसे-तैसे भी स्थिति की मांग हो, की जाती है । इसे खिचड़ी भाषा भी कह सकते हैं । भगतिये चाहे हिन्दी बोलें या उर्दू,पंजाबी, ब्रज अथावा अंग्रेजी के चालू शब्द, उसकी भाषा पर जातिगत सोच, भाषा-कथान की शैली का प्रभाव हावी रहता है । उनके उच्चारण में एक "टोन" रहती है,जो शब्द के विकृत होने पर भी उसमें निहित अर्थ को संप्रेषित करने में पूर्णतया समर्थ होती है । अतः "भगत" का मजा, प्रभाव सरसता उसकी आशु-संवादिता में ही निहित है ।

भगत की भाषा को "ऊटपटांग" भी कहा जा सकता है । परिवार में जब किसी विषय को लेकर अंट-शंट बका जाता है तो बुढ़िया कहती है "मियो क्या भगत पाईयो? स्याणेयां दी लाज ता रखा" । यह वाक्य इसके भाषिक स्वरूप को स्पष्ट करने में काफी समर्थ लगता है ।

निष्कर्ष कुल मिलाकर यह कहना कि भगत में कितना ही संजीदा प्रसंग क्यों न हो,

मनसुखे (Jesture) की संवाद शैली उसमें भी हास्य-व्यंग्य बिखेरती दर्शक समाज को चुटकी देकर हंसाती नहीं थकती । यही इस मंच की विशेषता है । इसी कारण इसमें न तो ऊब है न थकावट । सारी रात का जागरण हंसी- हंसी में बीत जाता है । मजे की बात तो यह है कि हम अक्सर ऐसे संवादों को अकेले में, उठते-बैठते, कार्य करते दोहराते खिलखिलाकर हंसते हैं, आनंदित होते हैं। लीला प्रसंग तथा स्वांग रूपों में ही भगत की भाषा मृदुता, चुटीलापन, व्यंग्य प्रधानता,अन्योक्ति प्रयोग लिए हैं। इसमें प्रदर्शित नाटक/ड्रामे की भाषा नाटक के कथानक के अनुरूप होती है जो पुस्तक में छपा होता है । परन्तु उस भाषा पर भी इनका भाषिक सामर्थ्य हावी रहता है।

-:-

लोक नाट्य बुढ़डा का दृश्य

बुढ़ड़ा

-डॉ० विद्या चन्द ठाकुर

हिमाचल प्रदेश के सभी भागों में लोक नाटकों की समृद्ध परम्परा व्याप्त रही है । चम्बा में हरणात्तर, किन्नौर में "होरिंगफो",कुल्लू में "हौरण" बिलासपुर में "स्वांग तथा मण्डी में "बांठड़ा" लोक नाट्य के मुखर रूप रहे हैं और आज भी सम्बन्धित क्षेत्र एवं समाज में न्यूनाधिक स्तर पर प्रचलित है। मण्डी के सदर बल्ह क्षेत्र में 'बांठड़ा' के साथ-साथ लोक नाटक बुढ़ड़ा का प्रदर्शन भी पूर्वकाल से चला आ रहा है । कुछ लोगों का विचार है कि बुढड़ा नाटक बांठड़ा के हरिरंग, माला, ऊंटवान, साह-साहणी आदि भिन्न-भिन्न स्वांगों के बीच का एक स्वांग है । बांठड़ा के साथ बुढड़ा के सम्बन्ध को बुढड़ा गीत की निम्नलिखित पक्तियां सम्पुष्ट करती हैं :-

चानणी ओची री पार चागा,
ग्वालू रा बांठड़ा भाईयो लागा ।

अर्थात् पार ऊंचे शिखर पर चांदनी का सौंदर्य छिटक पड़ा है और इधर ग्वालों का बांठड़ा लग पड़ा है ।

बुढड़ा लोक नाटक के अध्ययन से इन गीत-पंक्तियों की सार्थकता यहीं तक स्पष्ट होती है कि बुढड़ा के मंचन की परम्परा अवश्यमेव बांठड़ा की पृष्ठभूमि से प्रेरित हो कर विकसित हुई है । जहां तब स्वांगों में एक स्वांग होने का प्रश्न है, तो उस में यह तथ्य सामने आता है कि बांठड़ा के स्वांग क्रम का भाग बुढड़ा न तो आज है और न पहले कभी रहा है ।

वास्तव में जिस काल में बांठड़ा का प्रचलन प्रारम्भ हुआ, उस समय हमारे समाज में वर्ण-व्यवस्था के नियम बड़े जटिल थे । बांठड़ा लोक नाटक का मंचन स्वर्ण लोगों द्वारा किया जाता था। असवर्ण लोग इस में अभिनय नहीं कर सकते थे । जब बांठड़ा की भूमिकाएं उनके दिलों को छूती थीं तो उन्हें भी लालसा होती थी कि इस प्रकार का नाटक कुछ ऐसे ढंग से करें, जिससे सवर्ण जाति के लोग नाराज़ भी न हों और वे अपनी नाटक-स्वांग की अभिलाषा भी पूरी कर सकें । इसी सोच के परिणाम

में असवर्णों द्वारा अपने ही ढंग का बांठड़ा शुरू किया गया । आज जबकि वर्णव्यवस्था शिथिल हो गई है तो सवर्ण लोग भी 'बुढड़ा' का अभिनय करने लगे हैं । पहले इसे केवल असवर्ण ही करते थे । वे गांव के घर-घर जा कर इसका प्रदर्शन करते थे और प्रत्येक घर से उन्हें इस प्रदर्शन पर कम से कम एक टोकरी अनाज अवश्य दिया जाता था । जिस काल में यह आरम्भ हुआ उन दिनों असवर्ण लोग अधिकातः गांव के ग्वाल हुआ करते थे । अतः इस का नाम ग्वालों का बांठड़ा(ग्वालू रा बांठड़ा) रखा गया। परन्तु, पराल घास से मढ़े हुए इस के मुख्य पात्र की विचित्र शक्ल-सूरत एक बृद्ध जन जैसी लगने लगी तो लोगों ने व्यंग्य रूप में इसे बुढड़ा कहना शुरू कर दिया होगा।

धीरे-धीरे यह "बुढड़ा" नाम ही व्यवहार प्रसिद्ध हो गया और "ग्वालू रा बांठड़ा" नाम लोक-गीत की पंक्तियों तक ही सिमट कर रह गया ।

बुढ़ड़ा का प्रदर्शन मण्डी सदर तहसील के बल्ह क्षेत्र में बुढड़ा की परम्परा मुख्य रूप से पायी जाती है। न्यूनाधिक स्तर पर सुन्दरनगर तथा करसोग में भी इस का प्रचलन रहा है । कुल्लू से लगते चैहटीगढ़ सनोर के क्षेत्र में भी बुढड़ा का मंचन होता है परन्तु जो लोग इसे यहां करते है, उनसे पूछताछ करने पर पता चला कि वे मूलतः मण्डी-बल्ह के निवासी हैं । दो-तीन पीढ़ी पहले उनके पूर्वज यहां आ बसे तो यहां भी उन्होंने बुढड़ा का प्रदर्शन प्रारम्भकिया । आज भी इन लोगों ने यह परम्परा चलायी हुई है ।

संगीत बुढड़ा लोक नाटक की प्रमुख विशेषता यह है कि इस में सीधा वार्तालाप नहीं होता । इसका पूरा अभिनय नृत्य, गायन और वादन पर आश्रित है। बुढड़ा में सीधे सम्वाद-वार्तालाप का न होना भी तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था को इंगित करता है । लोक नाटक के सम्वादों में व्यंग्य का पुट होना स्वाभाविक है। असवर्णों के व्यंग्य वाण उस समय का अभिजात्य वर्ग कदापि सहन नहीं कर सकता था। इसलिय इसका पूरा प्रर्दशन संगीतमय ढंग से किया जाता है ।

पात्र एवं वेशभूषा लोक नाटक में बुढड़ा, चन्दरौली, जोगी, मसखरा साहब, डण्डू तथा पहाड़ी पात्र होते हैं । इसके नायक पात्र बुढड़ा के पूरे शरीर पर धान के पराल घास का आवरण चढ़ाया जाता है । इसके सिर के टोप खडखोपा के ऊपर तीन लम्बे-लम्बे सींग जैसे निकाले जाते हैं । इसी प्रकार हाथ के अगले भागों में भी तीन-तीन लम्बी-लम्बी अंगुलियां सी निकाली होती हैं । बगड घास, भाग के रेशे "सेल्ह" या मक्की के बालों की बुढड़े को दाढ़ी-मूछें लगायी जाती हैं ।

बुढड़ा के साथ एक या दो पुरूष पात्र नारी भेष में चन्दरौली की भूमिका निभाते हैं । वास्तव में चन्द्रावली (चन्दरौली) की गणना भगवान् श्री कृष्ण की सुन्दर

गोपियों में की जाती है । यूं तो चन्दरौली पात्र एक ही होना चाहिये परन्तु हिमाचली लोक नाटकों में चन्दरौली के साथ ही सखियों को चन्दरौली ही कहा जाता है। बुढड़ा की चन्दरौली 'घाघरू' पहनती है और सिर पर घूंघट के रूप में दुपटटा धारण करती है । आज कल घाघरू के स्थान पर सलवार-कमीज़ भी पहनी जाती है। चन्दरौलियां बालू, हार, बेसर, चाक, गोखरू तथा बालियां आदि आभूषणों से भी श्रंगारित होती हैं ।

'जोगी' पात्र भगवा या पीला चोगा, धोती तथा भांग के रेशे की जटटायें लगाये होता है । इसके हाथ में लौकी का कुमण्डल होता है। कई स्थानों पर जोगी ने शरीर के ऊपर तौलिया नीचे धोती और सिर पर पगड़ी बांधी होती है। इस स्थिति में पूरे शरीर पर इसने भस्म मली होती है ।

'मसखरा' साहब पात्र चन्दरौली के पति के रूप में विदूषकीय अभिनय करता है । इसने कपड़े-चिथड़ों से अपना विचित्र रूप बनाया होता है। उल्टी कमीज़, उल्टा पजामा, पजामा की एक टांग ऊपर तथा एक नीचे, चेहरे पर लौकी आदि का डरावना मुखौटा लगाये हुए होता है । सिर पर यह घास का टोपू (एक छोटी सी टोपी) पहनता है ।

इस में एक पात्र साधु वेशधारी 'डण्डू' होता है। 'डण्डू' ने हाथ में डण्डा लिया होता है। इस पात्र को नारद भी कहते हैं ।

बुढड़ा का पहाड़ी पात्र मण्डी के ऊंचे पर्वतीय क्षेत्रों की पुरानी डील-डौल वेशभूषा एव वैसी ही चाल-ढाल के साथ आता है । इसने पीठ पर किरड़ू (बांस का बना सामान ढोने का एक उपकरण) उठाया होता है तथा हाथ में एक डण्डा लिया होता है ।

इसके अतिरिक्त प्रतिदिन पहनी जाने वाली सामान्य वेशभूषा कुर्त्ता, पजामा, कोट, टोपी या पगड़ी में दो-तीन गायक तथा नगाड़ा और शहनाई वादक होते हैं। आजकल वाद्य-यन्त्रों में कहीं-कहीं हरमोनियम, तबला तथा ढोलक का प्रयोग भी चल पड़ा है ।

अभिनयक्रम बुढड़ा में गीत की लय और वाद्य के ताल पर मुक्त रूप से नृत्य करते हुए स्वांग किया जाता है । बुढड़ा के आरम्भ में भक्ति-गान "भगती" गायी जाती है इसमें सभी कलाकार इकटठे होते है और गाते हैं :-

भगती करो भाई, भगती करो रे,
सभ मिली के करो भाई भगती करो रे ।
भगती करो महामाया ओ तेरे,

भगती करो भाई भगती करो रे ।
भगती करो सिब-संकर तेरे,
भगती करो भाई, भगती करो रे ।
भगती करो ब्रह्मा, विशनु तेरे,
भगती करो भाई भगती करो रे।
भगती करो अग्ग पाणी पौण तेरे,
भगती करो भाई, भगती करो रे ।
भगती करो गास धरणी तेरे,
भगती करो भाई भगती करो रे ।
भगती करो देओ देवी तेरे,
भगती करो भाई, भगती करो रे।
भगती करो अम्मा बापू तेरे,
भगती करो भाई, भगती करो रे ।
भगती करो गुरु अपणे तेरे,
भगती करो भाई, भगतो करो रे ।
भगती करो बिरध आपणे तेरे,
भगती करो भाई भगती करो रे ।
भगती करो सारी दुनिया तेरे,
भगती करो भाई, भगती करो रे ।

अर्थात् हे भाईयो! सब भक्ति करो । सब मिल कर महामाया की भक्ति करो । शिव शंकर की भक्ति करो । ब्रह्मा, विष्णु की भक्ति करो। आग, पवन और पानी की भक्ति करो। आकाश, धरती की भक्ति करो । देवी-देवताओं की भक्ति करो। माता-पिता की भक्ति करो । गुरु की भक्ति करो । अपने वृद्ध जनों की भक्ति करो । सारी दुनिया भक्ति करो । भक्ति करो भाई भक्ति करो ।

भगती के बाद घर-घर जा कर स्वांग निकाले जाते हैं। स्वांग में बुढड़ा, चन्दरौली, जोगी, मसखरा, डण्डू तथा पहाड़ी का क्रमशः प्रवेश होता है। गीत और वाद्य संगीत निरन्तर चला रहता है । जो-जो पात्र जैसे-जैसे सम्मिलित होते जाते हैं, गीत के बोल उसी अनुरूप बदलते जाते हैं । यहां प्रत्येक पात्र के प्रवेश के साथ चलने वाले गीतों के मूल रूप में लिखकर साथ ही कोष्ठक में हिन्दी अनुवाद दिया जा रहा है ।

बुढ़ड़ा प्रवेश- स्वांग प्रारम्भ होते ही लोक रंग-भूमि में बुढड़ा पात्र सामने आता

है । उस समय गीत के बोल बुढड़ा पात्र के ऊपर केन्द्रित रहते हैं। जिस में बुढड़ा की शक्ल-सूरत के अनुसार परिहास किया जाता है । यथा-

नाच ओए बुढड़ेआ खड़ा-खड़ा,
आधी रोटी सारा बड़ा,
पाया ओए बुढड़ेआ तेरे मड़ा ।
× × × × ×

अरे बुढड़े ! तू खड़ा-खड़ा नाच, यह जो आधी रोटी पूरा बड़ा (माष का भल्ला) है, हे बुढड़े ! यह तेरे मृतक शरीर के काम आने चाहिएं ।

चन्दरोली प्रवेश रोली चन्द्रावली के प्रवेश के साथ ही पुष्प-माला का गीत चलता है । इस गीत में कृषक जीवन के कुछ पहलुओं का भी चित्रण मिलता है। जिस में बच्चों का घर में खेलना, किसान का बंजर भूमि खोदना, फसल बीजाई करना तथा भोजन के लिये शिकार करने का वर्णन आता है । यथा-

आया हो सुहागणिये फुल्ले माले ।
मरूआ पंजपतरा फुल्ले डाले ।।
कुड़ियां खलदी गुड़ीए माले ।
गब्भरू खेलदे खोड़ै चौले ।।
जटे क्या होगत कमाई ।
तवा भनिया किलणी बणाई ।।
जाची के केसी लुहारा रे जाणा ।
किलणीं कदालियां बणाणी ।।
जंगल कुटली खणाणी ।
जेस मौके जंगल कुटली खणाई ।।
जाणा दूर धारा ग्ताऊंआ ।
लुआणा बेजे रा भारा।।
ऐसे कुटा क्या बेजा बाहणा ।
ऐस कुंटा जौचिणे बेजा बाहणा ।।
ऐस कुंटा हरण विराजे ।
फल छोड़ी कुम्बल़ तोड़ी खाधे ।।
ल्याया मेरा तीर कमाणा ।
मांह हरणी रे हेड़े जो जाणा ।।
हरण मारी लु-आणा ।

मास मधरा राहिनी खाणा ।।

× × × × × ×

हे सुहागिन ! फूल माला के साथ आना । मरुआ पांच पत्तो वाला फूल डाली-डाली खिला है । लडकियां गुड्डिया और माला से खेल रही हैं । लड़के अखरोट और चावल से खेल रहे हैं । जाट किसान ने क्या बड़ा काम किया? तवा तोड़ कर किलणी (खनन-उपकरणिका) बनाई । जांच कर के किसी लुहार के पास जाना । वहां किलणी और कुदाली बनानी हैं । जंगल की बजर भूमि खोदनी है । जब बंजर भूमि खोद ली जाएगी । तब दूर धार के गांव जाना है । वहां से बीज का बोझा लाना है । इस बजर भूमि में क्या बीज बोना है । इस बजर भूमि में जौं और चने बोने हैं । इस बंजर भूमि में हिरन आया है । हिरन फल छोड़ कर कोंपलें खा गया है । मेरा तीर-कमान ले आओ । हिरन के शिकार में जाना है । हिरन को मार ले आएंगे । मांस का 'मधरा'(व्यंजन) बना कर खाएंगे ।

जोगी का प्रवेश अभिनय क्रम में चन्दरौली के बाद जोगी का प्रवेश होता है । तब जोगी की दशा पर गीत चलता है और साथ में इसकी सेवा-टहल के प्रबन्ध का भी बखान होता है । यथा-

ऐस कुंटा जोगी विराजे ।
जोगी री खिदमत केस कराईए ।।
जोगी मरदा सेले पाले ।
सैहर सकेता जो जाईए ।।
रूं होर कपाह लयाईए ।
जोगी जो ल्हेफा भराईए ।।

× × × × ×

इस बंजर भूमि में जोगी आ पहुंचे हैं । जोगी की सेवा-टहल कैसे किस से करवाएं । जोगी सर्दी पाले से मर जाएगा । सुकेत शहर (सुन्दरनगर) जाओ । वहां से रूई और कपास ले आओ । जोगी के लिये ल्हेफ-रजाई भरवा लो ।

मसखरा साहब का प्रवेश मसखरा चन्दरौली का पति होने का अभिनय करता हुआ आता है तो गीत चल पड़ता है :-

नाच ओ साहबा टोपा रे भारे ।
तेरे टोपे पे फेरा लाया हो ।।
साहब । तू टोप के गर्व पर नाच । तूने टोप के गर्व में ही यह चक्कर लगाया है ।

डण्डू का प्रवेश डण्डू मसखरा साहब के बाद नाटक के प्रांगण में आकर चन्दरौली से छेड-छाड़ करता है । उस समय गीत के बोल चलते हैं :-

घूंघट खोली देणा ओ,
सजन मिलदे प्यारे ।
आस्से तेरे चाऊए आए हो,
आस्से तेरे नैणा दे मारे ।।
ओ कंद तेरा मनखट्टुआ हो,
हुंदी बसदी नी गमवे ।
कंद तेरे देखी न परखी,
होरिया देया ना जावे ।।
×× × × × ×

अरे ! तुम्हें घूंघट हटाना होगा, यह प्रेमी-प्रेमिका का मिलन है । अरे! हम तो तेरे चाव से आए हैं, हम तो तेरे नयनों के आकर्षण से आए हैं । अरे ! तेरा पति दकियानाकूस है, बसता घर मत नष्ट करो। तेरा पति तेरी देख-परख नहीं करता, और दूसरों को भी देख-परख नहीं करने देता ।

डण्डू मसखरा साहब को बुढडु (बुढड़ा का लघुतावाची शब्द) नाम से सम्बोधित करते हुए उपहास करता है :-

लालू साहिबा बुढडुआ,
मीम भरी जवाना हो ।
लालू साहिबा बुढडुआ,
मीम केसरे हवाले हो ।।
तेरे चोली दे अंदर आवे हो,
दो विषधर काले हो ।
मैं हा नारदमुनि झणकारी ।
आगे मिली ये बचयारी ।।

अगिया गुजरी गोपाल ।।

अरे ! लाल साहिब बुढ्डु ,तेरी मेम साहिब भरपूर यौवन में है । अरे लाल साहिब बुढ्डु! तेरी मेम साहिब किस के सुपुर्द है । अरे ! तेरी कमीज़ के भीतर, दो काले सांप घुस आए हैं । मैं संसार में झंकार करने वाला नारदमुनि हूं । मुझे आगे यह वारी मिल गई । आगे यह मुरली मनोहर है ।। आगे यह गोपियों का गोपाल है ।

पहाड़ी प्रवेश अभिनय क्रम को आगे बढ़ाता हुआ प्रांगण में जब लटके लगाता, नाचता-झूमता पहाड़ी पात्र आ पंहुंचता है तो प्रियतमा की मृत्यु का समाचार, भाभी से प्यार होने पर उससे श्रृंगार करने का अनुरोध तथा कुछ प्राकृतिक वस्तु-स्थिति को चित्रित करने वाला यह गीत गाया जाता है :-

पहाड़ा रे देस्सा ले आया मेरा मामा,
बाल्हा रे देस्सा जो जाणा मेरे रामा,
बाल्हा रे देस्सा जो जाणा हो ।।
जेस्सा झुरी रा आसरा कित्ता,
तेस्सा री सुणी मूई,
हा तेस्सा री सुणी मूई,
भाभिए तेस्सा री सुणी मूई ।।
बालू बलाका डिगणे देइए ,
दोहरे लौंगा लाई,
भाभिए दोहरे लौंगा लाई ।
मण्डी री ज़ाई कुल्लू पजाई,
दोहरे लौंगा लाई,
भाभिए दौहरे लौंगा लाई ।।
कुल्लू सराजा छिऊं लागा पाणी,
नीहुला डुक्की धूई,
भाभिए नीहुला डुक्की धूईं ।।
× × × × × × ×

यह मेरा मामा पहाड़ के देश से आया है, इसे बल्ह के देश में जाना है । जिस प्रियतमा का आश्रय किया, सुना है वह मर गई । हां सुना है वह मर गई, भाभी । सुना है वह मर गई । बालू और बुलाक नासिका भूषण तू रहने दे, दोनों ओर लौंग लगा ले ।

भामी । तू नाक के दोनों ओर लौंग लगा ले । मण्डी की बेटी को कुल्लू पहुंचा दिया, दोनों ओर लौंग लगा लेना । भामी ! दोनों ओर लौंग लगा लेना । कुल्लू और सिराज़ में वर्षा तथा वर्फ लग पड़ी, मैदानी भागों में धुन्ध छा गई । भामी ! मैदानी भागों में धुन्ध छा गई ।

बुढड़ा के अन्त में सभी पात्र नृत्य करते हैं और तब गीत चलता है -

चानणी ओची री पार चागा,
ग्वालू रा बांठड़ा भाईयो लागा ।
चानणी ओची री पार ढाब्बा,
नाचदा लग्गी रा म्हारा लाम्भा ।
चानणी चोची री पार धारा.
मिली के बंडणा दुक्ख सारा ।
मिली के पहनणा होर खाणा,
मिली के हंसणा होर गाणा ।
चानणी ओची री भाईयो हेरा,
बरसा दिना रा म्हारा फेरा ॥

× × × × ×

पार पर्वत शिखर पर चादनी बिखर पड़ी है, यह भाईयो ! ग्वालों का बांठड़ा लगा हुआ है । पार घाटी में चांदनी छिटकी हुई, हमारा लम्बा-लम्बोतरा आदमी नाच रहा है। चांदनी पार धार में छिटक गई है,हमने सारा दुःख मिलजुल कर बांटना है । मिल कर पहनना और खाना है, मिल कर हंसना और गाना है। देखो भाईयो ! चांदनी की छटा कैसी सुन्दर लग रही है, इस आयोजन में हमारा यह वर्ष बाद के दिन का चक्कर है ।

जिस घर में बुढड़ा नाटक प्रदर्शित होता है, उस घर से-बुढड़ा मण्डली को अनाज पैसे आदि मिलते हैं । अनाज, पैसे प्राप्त होने पर मण्डली द्वारा शुभकामना में "बेल" गायी जाती है । बेल के कुछ बोल इस प्रकार से हैं :-

बेल ता बेल टोकरी नाजे केरी बेल,
राधा राम केरी बेल दे वो बधाई हो.
भागा वाले दिया बेल, दे वो बधाई हो ।।
जुग भला, जीण तेरे बच्चे, जीयां जोडियां,

महाराज जी दी जै जो उमर बकसाला हो ।।
ब्रह्मा, विशनु, शिव जी भला कराए हो ।
देऊ देवी नाग देऊ, सारे भला कराए हो ।।
× × × × × × × ×

बेल तो बेल एक टोकरी अनाज की बेल है, राधा राम की बेल है, इन्हें बधाई दीजिये । यह भाग्यवानों की बेल है, इन्हें बधाई दीजिये । युग भला हो, तेरे बच्चे जीवित रहें, तेरी जोड़ी कुशल रहे । ईश्वर महाराज की जय रहे जो आयु प्रदान करेगा । ब्रह्मा, विष्णु, शिव जी भला करें। देवी-देवता, नाग-देव सभी भला करें ।।

बेल में जब कोई पैसे देता है तो "टोकरी नाज़" की जगह दिये गये पैसे के बोल सम्मिलित होंगे । यदि श्री राधा राम पांच रूपया देता है तो गाया जाएगा :-

बेल ता बेल पंज रूपईये केरी बेल,
राधा राम केरी बेल दे वो बधाई हो ।
× × × × × × ×

बेल तो बेल पांच रूपये की बेल है, राधा राम की बेल हैं इन्हें बधाई दीजिये ।

आगे के बोल पूर्वोक्त बेल की भांति ही गाये जाएंगे । यदि कोई इसी बीच दूसरा व्यक्ति पैसे दे तो उसके नाम पर भी बेल गायी जाती है । बेल बायन के समापन के उपरान्त बुढड़ा मण्डली अगले घर को प्रस्थान कर देती है ।

उपरोक्त विवरण में बुढड़ा नाटक लगभग पूर्ण-रूप में वर्णित है परन्तु नाटक प्रस्तुत करते हुए इस के गीतों को समय के दृष्टिगत घटाया-बढ़ाया जाता है। क्योंकि, लोक संस्कृति एवं साहित्य की धारा कड़े नियमों मे नियन्त्रित नहीं होती । अतः इस प्रकार का संक्षेप-विस्तार अमान्य नहीं होता । इतना आवश्यक है कि उसका मानक सहज स्वरूप बना रहना चाहिये ।

बुढड़ा लोक नाटक का प्रदर्शन आश्विन की गौ माला पूर्णिमा से कार्तिक की घोड़ माला पूर्णिमा तक चलता है । उसके बाद एक दिन बुढड़ा मण्डली इकट्ठे अनाज़-पैसों के आधार पर प्रीति-भोज का आयोजन करती है और जो कुछ सामग्री, पैसे शेष बचते हैं, उसे वे परस्पर बांटते हैं ।

लोक-नाट्य -"भगत"

संसार चन्द प्रभाकर

प्रादुर्भावः- लोक नाट्य "भगत" भगवान कृष्ण की साकार भक्ति का प्रतीक है। इस लोक नाट्य का प्रादुर्भाव ब्रज-भूमि में की गई भगवान कृष्ण की रास लीलाओं से माना जाता है। क्योंकि इस लोक-नाट्य के आरम्भ में भगवान कृष्ण द्वारा वृन्दावन में गोपियों के साथ किए गए वार्तालाप तथा गीत एवम् नृत्य दोहराए जाते हैं । सम्भवतः भगत को पहले "रास" कहकर पुकारा जाता होगा परन्तु यह भगवान कृष्ण की रास लीला कृष्ण भक्तों द्वारा ही की जाती थी । इसलिए "रास" को ही कालान्तर में "भगत" की संज्ञा दी गई और "भगत" नाट्य के पात्र भगतिए कहलाए । लोक-नाट्य "भगत" भारतीय संस्कृति की मूल धरोहर है जिसे हिमाचल प्रदेश के ग्राम वासियों ने अभी तक भी सम्भाले रखा है । इस लोक-नाट्य को गांवों में अभी तक भी बड़ी श्रद्धा के साथ करावाया जाता है। क्योंकि भगवान कृष्ण ने अपनी रास लीला का केन्द्र वृन्दा-वन को चुना था अतः यह उनकी "रास लीला" ग्वालों और गोपियों के प्रति सच्चे प्रेम का प्रतीक होने के कारण 'भगत लोक नाट्य' के रूप में हमें भगवान कृष्ण के गांवों के लोगों, पशु-पक्षियों, नदी-झरनों, पेड-पौधों तथा गांवों के स्वतन्त्र एवं स्वच्छ वातावरण के साथ स्नेह की याद करवाता है । लोक-नाट्य भगत को देखने से हमें उस युग की याद आए बिना नहीं रह पाती जिस में भगवान कृष्ण ने गांवों के स्वतन्त्र बातावरण में ग्रामीणों के स्वच्छ एवं पावन हृदय के स्नेह का अवलोकन किया था । इस लोक नाट्य में भगवान कृष्ण के परम मित्र उद्दव जिन्हें 'ऊधो' उपनाम से भी पुकारा जाता था उसे भगतिए अपनी भाषा में "मनसुखा" कह कर पुकारते हैं। "मनसुखा" अर्थात् मन को सुख देने वाला है । यह मनसुखा लोक नाट्य "भगत" का पात्र भगवान कृष्ण और गोपियों के मध्य सन्देश वाहक का कार्य करता है । क्योंकि मनसुखा सच्चे प्रेम के मधुर सन्देश भगवान कृष्ण से गोपियों तक और गोपियों से कृष्ण तक पहुंचाता है जिससे दोनों ओर अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है। इसलिए भगतिए उद्दव को अपनी भाषा में 'मनसुखा' कहते हैं ।

विकास: भक्ति काल में कृष्ण भक्ति शाखा के सन्तों एवं विद्वानों ने भगवान कृष्ण की रास-लीला अर्थात् साकार भक्ति का प्रचार एवं प्रसार तेजी से आरम्भ किया और यही भगवान कृष्ण की रास लीला गांवों में लोक-नाट्य भगत के रूप में प्रचलित हुई । इस लोक-नाट्य को सुचारू रूप देने वाले लोग 'भगतिए' कहलाए जिन्होंने

गावों की भाषा में ही इस लोक-नाट्य को ग्रामवासियों को दिखाया। ये भगतिए एक ही गांव में रहने वाले लोग नहीं होते थे परन्तु इन का मुखिया इन लोगों को विभिन्न गांवों से इस लोक नाट्य को खेलने हेतु बुलाता था। भक्ति काल से लेकर आधुनिक काल तक इस लोक-नाट्य का गांवों में अधिक प्रचार एवं प्रसार रहा और आजकल भी यह लोक नाट्य गांवों में अपनी लोक प्रियता बनाए हुए है । गांवों के लोग कभी विवाह की प्रसन्नता में तो कभी लड़के के जन्म की खुशी में और कभी मनोकाम-ना पूरी होने पर भगत लोक-नाट्य का आयोजन भगतियों द्वारा करवाते हैं । यह लोक-नाट्य "भगत" कोई झूठ-मूठ की बात नहीं, कोई लाड़ाई-झगड़ा नहीं अपितु सच्चे प्यार की भक्ति की अनुभूति करवा कर अलौकिक आनन्द में रस विभोर कर प्राणी मात्र को अध्यात्मवाद की ओर आकर्षित करने का मधुर संकेत देता है । इस क्षेत्र में लोक नाट्य "भगत" का आरम्भ भगवान कृष्ण के अनन्य भक्त "बाबा माया राम" तथा "बाबा रांझू" से माना जाता है । ये दोनों भगतिए भक्ति काल में हुए प्रतीत होते हैं । इन दोनों की जीवनियों बारे भगतिए मौन हैं परन्तु इन दोनों की भगवान कृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति की घटनाएं इस प्रकार बतलाई गई हैं :-

'बाबा माया राम' भगवान कृष्ण के अनन्य भक्त बतलाए जाते हैं। यह "कतनौर" गांव, जो इस समय पोंग बांध की झील में डूब गया है, के निवासी बतलाए जाते हैं । यह कतनौर गांव ज़िला कांगड़ा की तहसील देहरा(हि0प्रदेश) में था। भक्त बाबा माया राम का बचपन इसी गांव में बीता । इन का कण्ठ बड़ा सुरीला था और यह अपनी भाषा में भगवान कृष्ण के भजन गाया करते थे । इन्होंनें एक भगत मण्डली का भी आयोजन किया हुआ था । इस भगत मण्डली के सदस्य जिन के द्वारा लोक-नाट्य "भगत" का आयोजन होता था विभिन्न गांवों में रहते थे ।

कहते हैं कि एक वार "बाबा माया राम" ने लोक-नाट्य "भगत" का आयोजन एक समीप के गांव में एक निश्चित रात को करना था । उन्होंने अपनी मण्डली के लोगों को इस लोक-नाट्य को करने के सन्देश भेज रखे थे परन्तु उस रात निश्चित समय पर इन की मण्डली के वे भगतिए जो स्त्री पात्र अर्थात् गोपियों की भूमिका निभाते थे, न पहुंच पाए। उस समय "बाबा माया राम" ने अपनी दो बेटियों को गोपियों की भूमिका निभाने के लिए तैयार किया तथा स्वयं उद्धव (मन-सुखा) बन कर लोगों के सामने निश्चित समय पर लोक-नाट्य "भगत" की क्रिया आरम्भ कर दी । भगवान कृष्ण के विरह में इनकी दोनों कन्याओं ने गीत गा कर

अपना नृत्य आरम्भ कर दिया । कहते हैं कि "बाबा माया राम" की इस अनन्य भक्ति को देखकर भगवान कृष्ण उस लोक-नाट्य "भगत" में जिस का आरम्भ बाबा माया राम ने भगवान कृष्ण के भजनों से किया, स्वयं प्रकट हुए । उस रात भगवान कृष्ण ने बाबा माया राम के द्वारा रचाए गए लोक-नाट्य भगत में आ कर स्वयं नृत्य किया जिनको केवल बाबा माया राम ही पहचान पाए । दूसरे दिन जब गांव के लोगों को इस बात का पता चला तो सारे क्षेत्र में "बाबा माया राम" के उस भगत लोक-नाट्य का प्रचार एव प्रसार हुआ ।

'बाबा रांझू' भी बाबा माया राम की भान्ति भगवान कृष्ण के अनन्य भक्त थे । इन का बचपन हार चक्कियां ज़िला कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश) में बीता। बाबा रांझू भी बाबा माया राम की भान्ति भगत मण्डली के मुखिया थे । इनको एक बार एक गांव से लोक-नाट्य "भगत" को करने का निमन्त्रण आया । इन्होंने अपनी भगत मण्डली के सभी सदस्यों को अपने गांव हार चक्कियां में बुलाया तथा सभी भगतिए इनके साथ उस गांव की ओर बढ़े जहां से इनको "भगत" (लोक नाट्य भगत) को करने का निमन्त्रण आया था परन्तु वह गांव इनके गांव से बहुत दूर और रास्ता अपरिचित एवं एक घने जंगल से हो कर जाता था । बाबा रांझू की सारी भगत मण्डली रास्ते से भटक गई और वे सभी निश्चित समय पर वहां न पहुंच पाए। इसलिए उन्होंने रास्ते में ही एक बनखण्डी को उचित स्थान समझ कर अपने लोक-नाट्य भगत की क्रिया आरम्भ कर दी । प्रातः काल जब लोक नाट्य-भगत की समाप्ति हुई तो बाबा रांझू ने अपने लोक-नाट्य भगत के नियम के अनुसार राज राम की आरती की। लोगों का कहना है कि बाबा रांझू की आरती करने वाली थाली में दीपक के पास सोने का एक टका और एक "डमरू" आकाश से गिरा और आकाश में एक दिव्य चमक हुई । वह डमरू आज भी चलाई स्थान पर जो बाबा रांझू के गांव हार चकिक्यां के पास है, विद्यमान है जिसे भगवान शिव की देन कहा जाता है ।

लोक नाट्य भगत के इस प्रकार के चमत्कारों को देख कर लोगों में इस लोक नाट्य के प्रति श्रद्धा बढ़ी तथा इसी चमत्कार के साथ भगत लोक नाट्य का विकास माना जाता है । भगतिए भगवान कृष्ण की साकार भक्ति पर विश्वास रखते हैं । इन लोगों से यह पता चलता है कि भगवान कृष्ण की यह साकार भक्ति पुरातन है जिसे ये लोग आदि काल से करते चले आ रहे हैं । भगत मण्डली के रूप में ये लोग स्थान-स्थान पर जा कर अपनी रोजी-रोटी कमाने के साथ-साथ भगवान

कृष्ण की द्वापर युग से आ रही साकार भक्ति की ओर संकेत करने के साथ-साथ भारतीय संस्कृति की पुरातनता और भव्यता की ओर आकृष्ट करते हैं ।

समय यह लोक नाट्य प्रायः रात को ही किया जाता। सूर्य अस्त होने पर इस लोक नाट्य को आरम्भ कर दिया जाता है और पौ फटने तक इसकी क्रिया चलती रहती है । यह लोक नाट्य प्रायः शीत ऋतु में ही खेला जाता है परन्तु किसी उत्सव पर या किसी मानव संस्कार पर यदि किसी गांव के लोग इस लोक-नाट्य को करवाना चाहें तो भगतिए सहर्ष उन की बात को मान लेते हैं ।

रंगमंच- इस लोक नाट्य के लिए किसी विशेष प्रकार के रंग-मंच की आवश्यकता नहीं है । इसे भूमि पर ही खेला जाता है । एक ओर दर्शक बैठ जाते हैं तो दूसरी ओर भगत मण्डली अपने साज ले कर बैठ जाती है । पात्रों की वेष-भूषा एव सज्जा के लिए किसी सराए का कमरा या किसी बृक्ष की ओट में पर्दा बान्ध दिया जाता है । रोशनी का प्रबन्ध मशाल जला कर, गैस जला कर या जहां बिजली उपलब्ध हो तो बिजली की रोशनी से किया जाता है ।

पात्रों की सज्जा के लिए रंग तैयार करनाः- पात्रों की सज्जा के लिए रंग फूलों के पराग, रस, बृक्षों की कोमल पत्तियों और विशेष प्रकार के पत्थरों तथा सीपियों से बनाए जाते थे । पत्थरों, सीपियों को घिस कर, पराग झाड़ कर और फूलों का रस निकाल कर भगतिए अपनी शारीरिक सज्जा करते थे परन्तु अब पाऊडर, सुर्खी बिन्दी का प्रयोग करते हैं ।

भगतियों की गुप्त भाषा के कुछ नमूनेः-

भाषा	अर्थ
1. अमो काल़ख धारिए होपर दे।	हम भगतिए हैं ।
2. अमो लोबा लोबदे आं ।	हम गाने तथा बजाने का काम करते हैं ।
3. काल़ख धारिए रमत करपान्दे आं ।	हम रात को कार्यक्रम करते हैं ।
4. शौत माणक जीक दे आं ।	बहुत से लोग हमारा कार्यक्रम देखते हैं ।
5. ननके,खडडे,माणक खैला डीचरिया एमां दी रमत चाणदे आं ।	बच्चे, बूढे, युवक, स्त्रियां और युवतियां हमारे कार्यक्रम को देखना चाहते हैं ।

6· धोर मेल अलतान्दे आं ।	सब लोग सारी रात हमारा कार्यक्रम देखते और हमें पैसे देते हैं ।
7· मैरी सैह कालुखी चामदे आं ।	हम शाम से सुबह तक लोगों को कार्यक्रम देते हैं ।
8· विहाण होपरदा अमा मम च सतारपदे आं ।	सुबह होने पर प्रोग्राम समाप्त होता है तो ही सब स्त्रियां तथा पुरूष घरों को जाते हैं ।
9· ओबे ममणे खाजणे की जीकदे आं ।	सब लोग अपने-अपने घरों को जाते हैं ।
10· हमो ननके होपरदे ।	हम छोटी जाती के लोग हैं ।
11· एवा मम च रमत करपते हैं।	हम भगत का काम करते हैं ।
12· धौरमे लेवरने जीकते हैं ।	हम यह सब काम पेट के लिए करते और धन कमाते हैं ।

भगत की विशिष्ट शब्दावली

1· साज़ी = बाजा बजाने वाला
2· तबलची = तबला बजाने वाला ।
3· भगतिया अभिनेता{एक्टर या पात्र}।
4· जोकर = रौलू या मनसुखा।
5· स्त्री पात्र = सखी या गोपी ।
6· कृष्ण =काहन

परम्परा। भगतिए लोक-नाट्य भगत की परम्परा महा-प्रलय के उपरान्त से अर्थात् सृष्टि के आरम्भ से ही मानते हैं इस परम्परा के बारे ये अपने शब्दों में इस प्रकार व्याख्या करते हैं :-
में इस प्रकार व्याख्या करते हैं :-

पौण नई था- पाणी नई था।
तां क्या था? धुंधूकारा
कौल़ फुल्ले बिच्च भगती कीती
योग कमाया सारा
अणविद्या ताल बजाया
राग गाया सारा .

चिडियां दा नईं था चमकारा
आदमी माणस नईं था हुंकारा
तां क्या था?- बाबा आद
कनैं सच्चा निरंकारा ।

भगतियों का कहना है कि ऐसे समय में भगत लीला की परम्परा आरम्भ हुई और भगतियों ने सब राग, बोलियां तथा साज-बाज पशु-पक्षियों, वायु के झोंकों तथा पानी की लहरों से सीखे अर्थात् प्रकृति ने ही इन को सब कुछ सिखाया । ये भगतिये अपने साजों का उद्गम बाबा रांझू को भगत में मिले शिवजी के डमरू से तथा गीतों का उद्गम पशु पक्षियों की बोलियों, वायु के झोंकों और पानी की तहरो से मानते हैं ।

भगत की प्रक्रिया

लोक-नाट्य "भगत" का आरम्भ सूर्य अस्त होने पर हो जाता है। सूर्य अस्त होने के कुछ क्षण उपरान्त सभी भगतिए अपनी अपनी वेष-भूषा मे लोगो के सम्मुख एक पक्ति मे खडे होकर सब से पहले भगवान गणेश की आरती गाते है ।

गणेश की आरती

{एक भगतिया बाजे के साथ बोलता है}

दोहा: पहलै गणपत मानिए, पाछे करिए काज ।
सभा बगानी बैठ कर, पत रखे महाराज ।

इस दोहे के उपरान्त सभी भगतिए आखे बन्द करके दोनों हाथ बांध कर गाते हैं

गणपत गणेस मनायो मेरी देवा
गणपत गणेस मनायो ।
सात सुपारी ध्वजा नरेल्ा पहले भेंट चढायो मेरी देवा ।
गणपत गणेस मनायो मेरी देवा ।
सूआ-सूआ चोला तेरे अंग बराजे
केसर तिलक लगायो मेरी देवा, गणपत गणेस मनायो मेरी देवा ।
नंगी-नंगी पैरी देवा अकबर आया
सोने का छतर चढ़ायो मेरी देवा, गणपत गणेस मनायो मेरी देवा।
पंजा-पंजा पांड़वा ने भवन वणाया अर्जुन चौंर झुलायो मेरी देवा
गणपत गणेस मनायो मेरी देवा, गणपत गणेस मनायो ।
ध्यानू भगत तेरो गुण गावे चरण कमल चित लायो मेरी देवा

गणपत गणेस मनायो मेरी देवा, गणपत गणेस मनायो ॥

इस गणेश की आरती के उपरान्त भगत मण्डली का मुखिया अरदास गाता है।

मुखिया: बोलो श्री ब्रज बासी लोगो "जय" श्री ठाकर जी की अरदास है ।
मेरा चित बचनां के पास है ।

जो कोई मन मे भाव प्रीति रखेगा वर अपने प्रेम का फ्ल पाएगा और जो कोई अपने मन में कपट छल रखेगा, वर अपनी करनी का फ्ल पाएगा ।

सुन्दर श्याम सिर मुक्ट विराजे,
सुन्दर नैन कपूर नैन, प्रधान गुण दान प्रेमी भक्त-
चित में लगाई है ।
धन-धन माया राम जिसने किए खूब काम
उड़त गुलाल चले पिचकारी जिनको नाया हो रहिए गुलाल
धन-धन माया राम भक्त है जिन दिखायो कृष्ण का रूप
जो बोले सो कृष्ण का नाम, बोलो कृष्ण भगवान की--जय ।

इस अरदास के उपरान्त लोक- नाट्य भगत का कार्यक्रम आरम्भ होता है । सबसे पहले तबला वादन होता है । मुखिया गाता है :-

धगे तां गिण नग तिर किट गिदि गिन्ना
धगे गिट गड़ान दूणा गिन्ना,
धगे किट गड़ान धा दर करतान
तक धाति ना-धाति ना धा-धा-धा ॥

इस प्रकार तबला वादन के साथ "मनसुखा" लोगों के सामने आता है जिस के सिर पर एक लम्बा टोप, गले में जनेंऊ कमर में धोती, मुंह पर लाल पीले सफेद चिन्ह, हाथ में बांस का डंडा§छीछरा§ मस्तक पर तिलक होता है । मनसुखा पात्र इसी तबला वादन की ध्वनि से नाचता है । उसकी वेषभूषा और नाच को देखकर दर्शक हंसते हैं । इस नाच के उपरान्त एक स्टूल दर्शकों के आगे रखा जाता है । उस स्टूल पर एक भगतिया भगवान कृष्ण के अनुसार वेषभूषा में आकर बैठ जाता है । भगवान कृष्ण का पार्ट करने वाला यह भगतिया पात्र सुन्दर रूप में संवारा होता है जिसके सिरपर मोर मुकुट, पीताम्बर, कमर में धोती हाथ में बांसुरी होती है । आखों में काजल मुख पर पाउन्डर अवरक की चमक, होंठ लाल गुलाब की भान्ति और मस्तक पर सिंधूर का टीका होता है । यह पात्र बारह से सोलह वर्ष की आयु तक का होता है । कृष्ण §पात्र§ के आने के उपरान्त तीन स्त्री पात्र §सखियां, गोपि-

यां§ सुन्दर वेष-भूषा में दर्शकों के सामने आते हैं । इन तीनों स्त्री पात्रों के रूप रंग, वेषभूषा ब्रज युवतियों के समान होती है । वे तीनों आकर कृष्ण की आरती उतारती हैं । मध्य का स्त्री पात्र हाथ में एक थाली लिए होता है । इस थाली में एक जलता हुआ दीपक, धूप, चावल के दाने और सिंधूर तथा पुष्प होते हैं। मध्य वाला स्त्री पात्र§सखी§ कृष्ण को टीका लगाता है, फूल, चावल के दाने कृष्ण के मस्तक से लगा कर उसकी वन्दना करता है फिर शेष दोनों स्त्री पात्र वैसा ही करते हैं । इस के उपरान्त कृष्ण भगवान की आरती होती है । सखियां आरती उतारती हैं । जलते दीप वाली थाली को मध्य का स्त्री पात्र भगवान कृष्ण के मुख मण्डल के आगे आरती उतारता है और सब भगतिए कृष्ण भगवान की आरती गाते हैं।

कृष्ण की आरती

आरती कृष्ण की होने लगी है -होने लगी है ।
जग-मग-जगमग जोत जगी है ।
आरती कृष्ण की होने लगी है ।
संघा सिर पर छत्तर झुलत है-छत्तर झुलत है ।
मांगत तुलसीदास कर जोरे-दो कर जोरे ।
परस राम सिय मानस मोड़े-मानस मोड़े ।
कृष्ण की आरती होने लगी है -होने लगी है ।
आरती राधे कृष्ण की होने लगी है ।
जगमग-जगमग जोत जगी है-जोत जगी है ।।

इस आरती के उपरान्त सखियां§स्त्री पात्र§ गाना गाती हैं और नाचती हैं ।

गोपियां

राम चन्द ने बाग लुआयो विच बिठायो माली नीं ।
हर-हर बूटे पाणी जो दिन्दा इक्क न रखदा खाली नीं ।
इकनां जो फल बहुत चंगेरे इकनां जो पत डाली नीं ।
तेजबान लिख गई विध माता जाती रे दुनिपया खाली नीं ।
हेरी बला ब्रज मोहन आये । मोहन आयो आ ------।

इस गाने के साथ सखियां नाचती हैं और कृष्ण की ओर हाथ से संकेत करती हैं।

कृष्ण आती रे जाती तू अलबेली आकर के करती नखरा ।
कुछ आप हंसे तेरे नैन हंसे, तेरे नैनों के बीच हंसे कजरा ।

मात्थे की बिन्दिया चम-चम चमके नक मोती हंसे तेरी बेसर का।
मारन वाला मार गयो कछु खोफ न कियो परमेसर का ।
हेरी बला ब्रज मोहन आयो, मोहन आयो आ ·······।।

इस गीत के साथ कृष्ण भी गोपियों के मध्य नाचता है । भगत (रास लीला) का यह आरम्भ का दृश्य देखने को बहुत सुन्दर लगता है । ऐसा प्रतीत होता है कि दर्शक ब्रज भूमि में बृन्दाबन पहुंचकर भगवान कृष्ण की रास लीला देख रहे हों । यह नृत्य बहुत देर तक चलता रहता है । अब कृष्ण के उपरान्त एक सखी पुनः गाती है । उसकी बगल में एक गागर होती है ।

सखी

कारी-बारी मत करो,
मत करो इतना शोर ।
जाई पुकारूं राजा कंस के आगे,
देखूंगी तुम्हारा जोर बंसी वालिया ···।
मुझे जल भरने दीजो जी !
अरज मेरी सुन लीजो जी !

कृष्ण

जे तू जमुना जल भरने आई,
तेरी गागर देऊं गिरा ।
अपणे-अपणे परसाने पर,
खूआ लऔ खुदवा ।
खूआ लऔ लगवा. सखी जी ···।
तुझे जल भरने न दूंगा मैं ।

इस गीत के उपरान्त सखियां हाथ जोड़ कर कृष्ण को कहती हैं-तीनों सखियां एक स्वर से :- महाराज सांजो पाणी भरन दिया नईं ता साड़े बच्चे प्यासे मरी जाणे । (सखियां पानी भरने चलती हैं) कृष्ण(सखियों का रास्त. रोक कर) मैं पाणी नईं भरन देणा । (सखियां कृष्ण को रास्ते में देख कर उनके मित्र मनसुखे(उद्धव) को आवाज़ देती हैं ।

तीनों सखियां (एक स्वर से):- वे···· मनसुखिया··· वे मन सुखिया
मनसिुखाः- (दूर से) वे आं ।

सखियां : वे मरे तेरी मां ।

अब मनसुखा दर्शकों के सामने आता है उसकी वेशभूषा अद्भुत होती है । मुंह पर कई प्रकार के टिक्के कमर में धोती हाथ में बांस का डंडा गले में जनेऊ और सिर पर बहुत लम्बा काला टोप पहने होता है । मनसुखे की वेशभूषा को देख दर्शक मन्त्र मुग्ध हो उठते हैं, हसते हैं ।

मनसुखा: तुहाड़ा बब्ब न मरे? मेरी मां कैंह मरै?

एक सखी: {मनसुखे को भुजा से पकड़ कर} वे लाला मनसुखिया ।

मनसुखा: {दर्शकों की ओर मुख करके} वे हां ।

सखी: {उसको पकड़ कर} वे तांह ।

मनसुखा: {अपनी भुजा को सखी को ओर करके} वे पकड मेरी बांह ।

सखी: {उसकी भुजा को हाथ से झिंझोड़ कर} तू खसमे जो खां ।

मनसुखा: {सखी के मुंह के पास अपना मुंह ले जाकर} तू खट्टै तां मैं खां ।

दूसरी सखी: वे इन्नियां उआजां दित्तियां, तू कत्थू सां?

मनसुखा: {उस सखी के पास जा कर कंधा मिलाकर} मैं कुथीं वी होआं तुसां अपणा कम दस्सो ।

सखियां: {तीनों एक स्वर में} वे असीं गईयां जमुनां दे घाट ।

मनसुखा: {दर्शकों की ओर मुंह करके} जमना दे घराट कैसी गईयां तुसीं जे आटा भियाणा था तां तुसां मसीनां चली जाणा था ।

सखियां: {मनसुखे की दोनों भुजाएं पकड़कर} वे स्हाड़े छोटे-छोटे न्याणे तरिहाए मरा दे ।

मनसुखा: {सखियों की ओर मुंह करके} अच्छा, तुहाड़े न्याणे बी हन ?

दूसरी सखी: वे दो चार ।

मनसुखा: अच्छा, दो कनैं चार, ए ता छः होए ।

दूसरी सखी: वे पढ़िया बी है ?

मनसुखा: आहो, तुसी गल्ल दस्सो ।

पहली सखी: असीं पाणीं भरन गईयां तां सांजो पांणीं नी भरन दित्ता।

मनसुखा: कुनी नी भरन दित्ता तुहांजो पाणीं {सखी कृष्णे पासे संकेत कर दी ऐ तां मनसुखा बी अपणें डंडे कने कृष्णें पासे संकेत करदा} यह बात कह कर मनसुखा इधर-उधर भागता है लोग हंसते हैं ।

एक सखीः वे मनसुखिया !

मनसुखाः ﴾खड़ा होकर﴿ नीं हां ।

तीनों सखियांः ﴾एक स्वर में﴿ वे साडा पाणीं भराई दे असां तिज्जो खुश करीगयां।

मनसुखाः किंयां खुश करीगयां मेकी तुसां ?

एक सखीः वे असां तिज्जो बरफी पेड़ा कनै मक्खण दिंगियां। ﴾इस बात को सुन कर मनसुखा बहुत जोर से हंसता है और वह दूर खडे कृष्ण के पास जाता है﴿

मनसुखाः ﴾कृष्ण के पास जा कर﴿ ठाकर जी मत्था टेकना !

कृष्णः खुश रौ मनसुखिया ।

मनसुखाः असीं खुश रहए जा कुछ रइए, तसीं मौजां लो ठाकर जी । एह लौ परसाद सखियां ने भेजिया । ﴾मनसुखा प्रशाद बरफी कृष्ण की ओर करके स्वयं खा लेता है लोग हंसते हैं﴿

कृष्णः एह तें ठगी कीती मनसुखिया ।

मनसुखाः तां तुसीं नी ठगियां करदे । तुसीं सौ ठगियां कीतियां असीं जे इक करी दिती ता के होया?

कृष्णः असीं के ठगियां कीतियां?

मनसुखाः कदी तुसीं सखियो जो पाणीं नीं भरन दिन्दे । कदी तिन्हां दा रस्ता रोकी लैन्दे ओ, कदी तिन्हां दे कपड़े लुक्हाई लैन्दे ओ, ता कदी आप लुकी बौन्दे ओ, कितणियां के गिणा !

कृष्णः एह सखियां मेरे गुण नहीं गान्दियां । ﴾मनसुखा अब सखियों की ओर जाता है ﴿

मनसुखाः वे सखियो ! वे सखियो !

एक सखीः ﴾आगे बढ़ कर﴿ हां वे लाला मनसुखिया!

मनसुखाः नी तुसां ठाकर जी दे गुण कैंह् नीं गांदियां?

सब सखियाः वे गान्दियां, रोज गान्दियां ।

मनसुखाः गाई कै दस्सो ।

इसके उपरान्त सखियां गीत गाती और नाचती हैं मनसुखा भी साथ नाचने लगता है लोग हसते हैं । इस के उपरान्त सखिया पानी भरने जाती हैं और अपने दुपट्टे वहां छोड़ जाती हैं कृष्ण उन के दुपट्टे﴾कपड़े﴿ उठा लेता है । सखिया मनसुखे के पास जाती हैं मनसुखा उनके कपड़े ला कर देता है । इसी प्रकार यह रास-लीला

भगत का पहला भाग समाप्त होता है । इसके उपरान्त भगतिए सुआंग{कौमक} करना आरम्भ करते हैं । भगत के सुआंग इस प्रकार हैं ।

स्वांग

पात्रः गद्दी 2· गद्दण 3· भोल 4· रौलू 5· रंगा अर्थात् यह पांच पात्रों का सुआंग है। पहले तीन पात्र गद्दी, गद्दण और भोल स्टेज़ पर आते हैं. । गद्दी-गद्दण अपनी वेशभूषा में होते हैं और रौलू लम्बा टोप पहने फटे पुराने कपड़े पहने मुंह पर अनेक रंगो के टीके लगाए हाथ में डंडा लिए होता है।

गद्दण-गद्दी के साथ गाती है:-

हां ओ, लम्मियां झम्मियां मितरां जियां ओ-ए-हां
हां ओ ....ए-हां ।
भलिया सांजो लेई जायां परदेसां की-जाया ओ मितरा
ए-हा .....ए-हा........ए हा ।

2· गद्दण, भोल के साथ गाती है भोल चेले के वेष में दन्तारा ले कर आया होता है ।

हा वे लाल दन्तार, ए वालिया जियां ए हां
ओ भोला ओ .... ए हां ।
मिंजो दई तान सुणायां वो मितरा-जियां वे हां....।

3· गददण अब अकेली दन्तारा बजने के साथ मस्त होकर गाती है । इस गीत का नाम ल्हीली गीत है:

अवों मरी-मरी जानियां-ओ मितरा जियां वे हां
तेरिया वेदणां--वे हां ......।

4· अब गद्दी गद्दण और भोल इकट्ठे गाते हैं:-

छोहरिए गदरेटड़िए तू खेलण कैंह् नी आई वो
घडां भज्जा सप्पड़िया ता बिन्ना रिया बाईं वो
छोकरिए गदरेटड़िए तूं खेलण कैंह् नी आई वो ।
{तीनों नाचते हैं} गीत......
धारा धूरी पई ऐ--- धूरी पई ऐ
ओआ मिल मुंह दिया धारा-धारा धूरी पई है ।

इस गीत के साथ तीनों का नाच चलता है। गद्दी मस्त हो जाता है उसे मस्त देख कर काले मुंह वाला लम्बे टोप वाला भोल गद्दण को उठा कर ले जाता है । रौलू एकदम आ कर उनके साथ मिल जाता है, गद्दण रौलू के साथ चली जाती है ।

गद्दी अकेला रह जाता है । वह उन सब को अपने साथ न देख कर कहता है :-

गद्दीः मुंह दी गद्दण कुथू जो गई वो मुए दी गद्दण । ‖उसकी इस आवाज को सुन कर रंगा आता है जो लाल मुंह किए लाल कपड़े पहने सिर पर लाल टोप पहने होता है ।.

रंगाः ‖गद्दी के पास जा कर‖ के तोप दे ओ मितरा?

गद्दीः मुंह दी गद्दण अच्छरी एथूं नचदी थी नां सेह् भुजी गूरी ।

रंगाः तां हेर लाणी थी नां तुसां ।

गद्दीः भलिया हेर वी लाई पर नई लुभी नां- दस भलिया हुण के करिए ?

रंगाः चढ़दे पासे दिक्खो ।

गद्दीः घरोन्दे पासे दिखदा । ‖लोक हंसदे‖

रंगाः हेठे पासे दिखो ।

गद्दीः ऊपरे पासे दिखदा ‖लोक हसदे‖

रंगाः लाई, एह दे सपूत थे नां तुसां, तांई ता गद्दण गुआई नां। पर जे मैं तोपी दियां तां के दिंगे?

गद्दीः ता भलिया तिज्जो गद्दणी दा त्रीया हिस्सा देई दिंगे । ‖रंगा गद्दणी तोपण लगदा कने सैह गद्दणी कन काल्ू मुहए आले जो पकड़ी करी लेंई आउन्दा‖

गद्दणः मैं नी बसणा इस दें ।

गद्दीः बसी पौ मडिए मैं तेरे सब्बो कम्म करंगा, कपड़े धोई दिंगा, भांडे मांजी दिंगा कने तेरे सारे भडिया माजी दिग्गा ।

रंगाः तां बड्डे पतीले कुण मांजगा ?

रौलः मैं मांजगा मैं खरा करी चिटआ करी दिंग्गा । ‖गद्दी हुण तुर-नुर शैले पासें दिखदा कनैं गद्दण कनैं रौलू नच्चणा लगी पौन्दे‖

गीत:-

मैं तुद्द मेले जो जाणा ओ सिब्बिए
मैं तुद्द मेले जो जाणां····· ओ
होरना ता जाणां तल्ली दे मेले
मैं तुद्द सल्ली दे मेले ओ सिब्बिए
मैं तुद्द मेले जो जाणां ओ सिब्बिए
होरना ता खाणा ऐह्णी दा साग

मैं तुद बिस्की सराब ओ सिब्बिए

मैं तुद मेले जो जाणा ओ सिब्बिए ।।

इस गीत के अन्त गददण भोज, रौल और रगा वे साथ चली जाती है । गददी उनक पीछे भगता है ।

गद्दीः §भागते हुए§ मुंह दी गद्दण वो लोको । मुंह दी गद्दण ।§ लोग हंसते है और सुआंग समाप्त होता है।§

गारड़ी चेले दा सुआंग§भोल, गद्दण-गद्दी गद्दिए दी गद्दण बमार।

गद्दणः हाय ! हाय ! अबो मितरा, मुंह दे कालजुए बड़ी पीड़ वो— हाय ।
§गद्दण गिर पड़ती है, गद्दी विह्वल हो उठता है। दर्शकों की ओर देखकर आवाज़ देता है§

गद्दी मुंह दी गद्दण बमार वो लोको । कुथूं लाज करां वो §भोल आता है§

भोलः है क्या इसा जो ?

गद्दीः भला पेटे पीड़ पौन्दी भिरी बठोई बंगड़ोई जान्दी ।

भोलः कोई बैद हकीमे लिया कोई लाज करा । कोई दुआ दारू करा ।

गद्दीः डाक्टरे हकीम दा कम नईं एह । कोई ओपरी मालूम हुन्दी इसा जो इयां लगदा कोई झपट नां होऐ ।

भोलः तां कोई चेला गारड़ी लियोणा था ।
§गद्दी गद्दणी के पास जा कर§

गद्दीः कोई चेला लियोओ ?

गद्दणः ओएई चेला लिया, जिन्नी पर के साल लाज कीता था साल भर खरी रई वो मितरा, लिया झटकर उस्सी चेले जो ।
§गद्दी चेले लियोण जान्दा§ चैला आता है ।

गद्दीः §चेले की ओर देखकर§ दिख थां मुंह दी गद्दण तो पीड़ा ने सुआस नी लै करदी ।
§चेला गद्दण की ओर देखता है । गद्दण चेले को देख कर मुस्कराती है हंसती है और फिर रोती है§

चेलाः मितरा, इसा जो बड़ी तगड़ी झपट पईयो, लिया मुट्ठा-धूफ कनै धागा, सतां रंगा दा कनैं चौल़ कनै मांह् दे दाणे ।
§गद्दी चेले द्वारा बतलाया गया सामान लेने जाता है । गद्दण चेले के साथ संकेतों में प्रेमालाप करती मुस्कराती है । उन्हें ऐसा करते भोल देखता

रहता है । गद्दी समान ले कर जब आता है तो गद्दण पुनः रोती है ।

चेलाः §गद्दी से§ मितरा तू बाहर ई गौ, मैं हुण इसा दा लाज करन लगा पर कोई नेड़े कनै साह्मणे नी चाईदा। §गद्दी चला जाता है चेला और गद्दण अकेले बैठ कर बातें करते हैं । भोल यह देख कर गददी के पास जा कर उसके कान में कुछ कहता है । गद्दी अन्दर जा कर देखता है । गद्दण,गद्दी को देखकर चीखें मारणा आरम्भ कर देती है ।

चेलाः §गद्दी से§ मितरा,जे इसा दा लाज कराणा तो बाहर ई गो नईं ता इसा ठीक नई होणा§गद्दी बाहर चला जाता है, भोल आगे जा कर देखता है, लोग हंसते हैं । गद्दण खेलती हुई चेले के साथ दर्शकों के

सामनेआती है सिर हिलाती है गद्दण नाचती है और चेला दन्तारा बजाता है । चेला गीत गाता है । गारड़ी दूर से अपनी कमर झुका कर छुप-छुप कर आता है ।

गीतः-

चेलाः ओ-काली मत दिखदा ओ धौली मत दिखदा
दो-दो बडारें आईं-§वीण्-वीण्--वीण् वीण्-वीण्§

चेलाः ओ विसनुआं -ओ घडिसनुआं तेरा लाल टोपू सुझदा नहीठा-नहीठा जायां मेरा भाई।
दन्ताराः बीण्-वीण्-वीण्-वीण्--वीण्----।

चेलाः ओ अद्दी रातीं नाले तिहलियां गद्दिदए जो निन्दर आई
दन्ताराः विण्-वीण्--वीण्--वीण् --वीण्--।

चेलाः गद्दणी जो ढककी पलेटी के नीया दिक्खे ना कोई भाई।
दन्ताराः वीण् वीण् -वीण् वीण् --वीण्---।

इस गीत के साथ गद्दी को नीन्द आ जाती है । चेला गाता बजाता रहता है ।गारड़ गद्दण को लेकर चला जाता है । गद्दी सोया हुआ होता है खुरटिं मारता है । लोग हंसते हैं । चेला भी उठकर चला जाता है भोल गद्दी को जागृत अवस्था में लाना चाहता है ।

भोलः §गद्दी को हिलाते हुए§ ओ मितरा ! ओ मितरा !

गद्दी: सौण दे मोया, कओ जगा नां?

भोल: ता तेरी गद्दण चली गई ।

गद्दी: कुत्थूं जौ {आंखे मलता है}

भोल: चेले कर्नें ।

गद्दी: लाज करा दी होणी सैहू ।

भोल: हुण तेरे हत्थें नी आउणीं सैहू ।

{गद्दी अब व्याकुल होकर उठकर दौड़ता है}

गद्दी: {जोर से बोलता है} अवो खरा लाज कराया, गद्दण वी गुआंई सड़ी ।

{गद्दी अब रोता हुआ चला जाता है लोग हंसते है} सुआंग समाप्त होता है।

बुजडू का स्वांग

पात्र:- रौलू: लम्मा काला टोप, मुंह पर लाल पीले टिक्के, फटे पुराने कपड़े

बुझरू: धोती, सिर पगड़ी, मस्तक पर तिलक हाथ में डमरू तथा तेल का वर्तन

रौलू: एक लम्बी तलवार लेकर नाखून काटता है ।

बुझरू: {उसके सम्मुख आकर} ओए । के करा करनां? हत्थों बढी लैंहगा ?

बुझरू: दिक्खी लिया तू रोणा {बुझरू चला जाता है । जब वह थोडी दूर जाता है तो रौलू का हाथ काटा जाता है । लहू बहता है । वह बुझरू के पीछे भागता है ।

शैल: {बुझरू के पास जा कर} सच दस मैं कदूं मरना ।

बुझरू: ओए जाणा दे मिंजो {रौलू, बुझरू को पकड़ कर बैठ जाता है, उसके पैर छूता है।

रौलू: {उसके आगे रोता है} ओए सच दसमैं कदूं मरना ।

बुझरू: {एक धागा उसके गले में बांधकर} जालू एह धागा टूटी जांगा तां समझी लिया तू मरी गिया ।

{रौलू बुझरू के जाने के उपरान्त उस धागे को खेंचता है धागा टूट जाता है । शैलू रोता है और अपने घर जा कर कबर खोदने का औज़ार लेकर कबरस्तान की ओर चला जाता है । वह कबर खोदने में व्यस्त हो जाता है । कबरस्तान रास्ते के किनारे पर होता है । लोग जब उससे पूछते हैं कि वह क्या कर रहा है तो वह कहता है ।

शैलू: अपणें तांई कबर बणा नां, दूस्सा दा नई तुड़ांजो, मैं मरी गीयां धागा टूट्टी गिया ।

§अब रौलू कबर खोद कर उसमें सो जाता है । जब रात को उसे ठंड लगती है तो वह जोर से चीखता है §बड़ा सीत । बड़ा सीत। मसाफर उसकी आवाज से घवरा कर रास्ता छोड़ कर चले जाते हैं कुछ-एक के कम्बल तथा रोटियां वहां रह जाती है रौलू कबर से निकल कर रोटी खाता है और कंबल ओढ कर सो जाता है । दूसरे दिन प्रातः वही बुझरू उसी रास्ते आता है । रौलू बुझरू को पहचान लेता है । वह अपनी कबर से कहता है:-

रौलू: ओए बुझरूआ । दिक्ख भला मैं मरी गीया के जीन्दा§बुझरू कबर में से आई आवाज़ को सुन कर डरता है भागता है ।:

भागते देख शैलू भी कंबल ओढ कर उसके पीछे भागत है। बुझरू का सारा सामान गिर पड़ता है और वह बेहोश हो जाता है । रौलू उसे टांग से पकड़ कर पसीटता है और कबर की ओर ले जाता है । बुझरू चीखता है लोग हसते है ।

सुआंग समाप्त होता है ।

इसी प्रकार के विभिन्न सुआंग भगत लोक्-नाट्य में सारी रात चलते रहते हैं भगतियों का अभिप्राय मुख्यतः दर्शकों को हंसाना और उनका मन भगवान कृष्ण के प्रति आकर्षित करना होता है ।

लोक नाट्य भगत का अन्तः- लोक-नाट्य भगत का अन्त पाण्डवों के सुआंग से होता है । अन्त में पांचों पाण्डवों का दृस्य दिखाया जाता है । यह दृस्य एक चारपाई के माध्यम से किया जाता है । चारपाई के चारों सिरों पर चार लकड़ियां गाड़ी जाती हैं । उन्हें पगड़ियां पहनाई जाती हैं । एक भगतिया चारपाई के बीच में से अपना सिर निकालता है उसे पगडी बन्धी होती है मूछें लगी होती हैं । वह भगतिया चारपाई को चारों ओर बड़े जोर से घुमाता है । लोग§दर्शक§ इस सुआंग को देख कर कपड़े, पैसे और कपास, सुआंग के आगे भेंट करते हैं । एक और भगतिया जोर से बोलता है-"अबो भीम सैना चक्रवर्तिया बो" इस के उपरान्त चारपाई उठाए जो भगतिया होता है वह कहता है-"भार पईया ओ भार भईया" इसके उपरान्त जिन लोगों ने भगत की लीला करवाने हेतु भगत मण्डली को बुलाया होता है वे एक बकरा ला कर उस पांचों पाण्डवों के सुआंग के आगे लाकर खड़ा कर देते हैं । बकरे की

पीठ पर पानी छिड़का जाता है । बकरा पानी पीठ से झाड़ता है तो लोग समझते हैं कि भगत की मनोकामना पूरी हो गई है और कार्य सफल है । उस बकरे को भगत वाले ले जाते हैं इस सुआंग के उपरान्त अन्त में राजा राम की अरदास गाई जाती है । पौ फटने पर इस अरदास को गाए जाने का नियम है ।

धूप दीप तेरी आरती-उतरे सकल सरूर ।
प्रेम राधा किच्छ ना करदी, तेरी गोकल कितणी क दूर ।
लां किए लोईए गुजरिए, जमना घड़ा भरे ।
जिन के सांचे ठाकर मिल गए, त्यों-त्यों भगत तरे ।
ताल, बाजे
थाल, बाजे
ज्योति-स्वरूप नारायण-आदि ओंकारा
नाम निरंजन सच्चा निरंकारा
धुंधूकारा, पौण-पाणी, जल-थाल, कौल पुल्ल ब्रह्मा देवता विसणू देवता, जल-थाल
धरती माता गास मण्डल, सूर्च देवता, चन्द्रमा देवता ।
नौ लक्ख तारा, ध्रुव तारा, ध्रुव भगत, माया राम भगत,
तुमरी गत कोई ना जाणे
नानक दास भई अरदास ।

इसके उपरान्त भोग पड़ता है और लोक नाट्य भगत का कार्यक्रमसमाप्त होता है।

सारांश इस लोक-नाट्य भगत में भगवान कृष्ण की साकार भक्ति के साथ-साथ भक्त माया राम, बाबा रांझू की अनन्य भक्ति की ओर संकेत मिलते हैं। भारत की संस्कृति अध्यात्मवाद के मूल-चिन्ह इस लोक-नाट्य में निहित हैं । भगत लोक-नाट्य में गांव के लोगों में मनो कामनाओं को पूर्ण करने की आस्था निहित है । इस लोक नाट्य से लोक कला कारों को प्रोत्साहन मिलता है । भगत करने वाले ये लोग गांव में विभिन्न उत्सवों पर अपनी रोजी-रोटी के लिए भिक्षा लेते हैं । गांव के लोगों में इनका सरोकार है । केवल अछूत जाति के लोग और झींर जाति के लोग इस लोक-नाट्य को खेलते हैं । इस लोक-नाट्य में विभिन्न प्रकार की सामाजिक कुरीतियों की निन्दा करने के सुआंग लगाए जाते हैं । यह लोक-नाट्य "भगत" लोगों को भगवान कृष्ण, गोपियों, ग्वालों, उद्धव के साथ-साथ अनेक भक्तों के जीवन के बारे प्रकाश डालता है । भगत-मण्डली के सदस्य इस लोक नाट्य के माध्यम से विभिन्न नाटक भी मंच पर खेलते हैं ।

लोक नाट्य - बौरा एवं नचार उपजाति - एक सर्वेक्षण

-ओम प्रकाश शान्त

हिमाचल प्रदेश के ऊना-मण्डल के मुख्यालय ऊना से हमीरपुर मण्डी राजमार्ग पर डंगोली गांव केवल तीन किलोमीटर की दूरी पर स्थित है । इसी राजमार्ग पर कुछ पग आगे चल कर ही-पूर्वी किनारे पर शिखर शैली का "वैष्णव-बाबा बालक नाथ तथा शिव का मन्दिर" है । इसी मन्दिर के उत्तरी किनारे के साथ-साथ पूर्व की ओर हिमाचल प्रदेश सार्वजनिक लोक निर्माण विभाग द्वारा पन्द्रह सौ मीटर बने पक्के सम्पर्क मार्ग पर लगभग ग्यारह सौ मीटर सड़क के कुछ आगे चल, चोई-लांघ कर उसी के किनारे पर "नाचारों" की बस्ती है । इस बस्ती में ग्यारह घर हैं । यह बस्ती पूर्वी-दक्षिणी किनारे पर स्थित है ।

नचार वंश परम्परा - डंगोली

'बोला नचार' का कहना है कि हम इससे पहले भी यहीं रहते थे । हमारा मूल यहीं है हम बाहर से आकर नहीं बसे जबकि इनके साथ का दूसरा वंश नचारों का भलेड, बग्गी-हमीरपुर से डंगोली आकर बसा है ।

समुन्दडिया के नचारों के वंश के पांच घर हैं इनके पहले पूर्वज भी इसी गांव के वासी थे । कालू राम-नचार की जानकारी के अनुसार वंश परम्परा:-

सबलू
घरवारू,
साहबू,
रंगीला-सीमरू,
पूरन/माइदित्ता-तरसेम,
हरि राम,
कालूराम, सतपाल,
बलबीर, (विवहित) सन्तान नहीं ।

व्युत्पत्ति

नट् या नृत् धातु से नृत्य से नाच, नाचना और फिर नचार की रूढार्थ में व्युत्पति हुई है । शूद्र ज़ाति से सम्बन्धित इस उपभाग ने अपने लोकरूप के सांस्कृ-

तिक पक्ष को आज तक आदिकालीन स्थिति में कुछ अंशों तक सुरक्षित रखा है । इसमें चमार जाति का ही धार्मिक, सामाजिक एव सांस्कृतिक रूप है । जिसका सम्बन्ध नाच-गान, स्वांग तथा लोक संगीत से है । इस प्रकार नचार उप-जाति चमार जाति का ही सांस्कृतिक लोक उप-संस्करण है । स्वाधीनता के पश्चात् बदलती हुई परिस्थितियों ने इन्हें भी प्रभावित किया है यह वर्ग भी जो आज से 40 वर्ष पूर्व अपना अलग रूप रखता था वह आधुनिकता के सांचे में ढलने की दिशा में है । फिर भी इन्होंने अपनी मान्यताओं को तिलांजली नहीं दी है । जैसे -कैसे अपनी संस्कृति को यह सुरक्षित किए हुए हैं । पहले से ही नचारों का मुख्य धन्धा नाच-गान, नकल करना, स्वांग आदि ही था तो भी यह चमार जाति के पुरोहित-पण्डित नहीं थे । इन का मूल व्यवसाय एक जातिगत संस्था का विकृत रूप था जो बाद में नचार नाम से अलग से मान्यता पा गया । इनके पास भूमि का अधिकार न था, शिक्षा तो थी ही नहीं । अपने समाज में इनकी धार्मिक प्रतिष्ठा थी जिससे इस वर्ग के लिए मांस, मदिरा, मरे हुए पशु का मांस खाना वर्जित था । इस प्रकार इनका निजि जीवन अपने वर्ग में प्रतिष्ठापूर्ण था ।

- नचारों का मुख्य धन्धा - दाहजा

इस क्षेत्र में चमार जाति अपनी द्वापर कालीन परम्परा अनुसार दाहजा उत्सव का वर्ष में एक बार या अपनी सुविधा, असुविधाअनुसार एक से अधिक वर्ष के पश्चात् भी आयोजित करती है । इसका आधार चमारड होती है। चमारड में एक कुन्न अर्धा सिद्द चरणों का थान होता है इस थान से पहले गड़ा अवश्य होता है। उसके आगे ही चमारों की बस्ती होती है पहले इनका मुख्य धन्धा मरे ढोर उठाना और उनकी खाल उधेड़ना रहा है । इसके साथ सिद्द चरणों की प्रतिष्ठा पशुरक्षा से अनुबन्धित है । यह अनुबन्ध गांव की सीमाओं से प्रतिबद्ध है इसलिए इस दिन रात्रि में पहले ढोल के द्वारा चेला गुगल डाल कर अपने पूरे वेश को धारण कर गांव की फेरी लेता है । कभी पशु रोग फैल जाये तो घर-घर पशु-शालाओं {गोरन} में धूनी दी जाती है, नाद बजाया जाता है । "अलख-अलख" कर उद्घोष किया जाता है-आदि। इस प्रकार दहाज़े का उपकरण आरम्भ होता है ।

गड़ा का महत्व

गडा रक्षक के रूप में है । इसको लांघ कर कोई इलबला भूत-प्रेत, पिशाच इनकी वस्ती में प्रवेश नहीं पा सकता । वस्तुतः यह एक तान्त्रिक रूप में रोक है सिद्द चरणों की तीन सौ साठ सिरकियां मानी जाती हैं । किन्तु उन सबसे पहले

इसका आहवान एवं पूजन होता है जिसे दहाजा करवाने वाला चेले के रूप में नचार विधिवत करवाता है । वस्तुतः "दहाजा" सिद्ध चरणों का एक पूरी रात का तान्त्रिक अनुष्ठान है जिसमें अनेक प्रकार के नाच-गान, स्वांग लीलायें तथा तान्त्रिक योग सिद्धि के खेल शामिल हैं जिन्हें इस क्षेत्र के नचार ही करते हैं ।

पूरे गांव का योगदान दहाजा उत्सव में रहता है जिसमें इनके पूरे रिश्ते-नाते भाग लेते है । गांव भर के, बाहर के लोग इसको देखने-सुनने आते हैं । रिश्ते नातों व अपनी पूरी बस्ती को भोजन दिया जाता है । भोजन 'प्रथम पूजन' के पश्चात् दिया जाता है फिर पूरी रात नाच-गान एवं स्वांगों का उपक्रम चलता है जो बड़ा ही मनोरंजक तथा सांस्कृतिक भावना से ओत-प्रोत होता है ।

दहाजा केअवसर परकृष्ण लीला की जाती है इसमें पांच गोपीयां तथा कृष्ण का स्वांग होता है जिसमें रास के अनेक रूप दिखाये जाते हैं । उसके पश्चात् लाला. फकीर तथा "बौरा अग्नि नृत्य" होता है । यह नोक नाट्य अपने आप में भारत भर में अद्वितीय है जिसे आज भी डंगोली के नचार सुरक्षित किए हुए हैं । इसके अतिरिक्त ये निम्नलिखित नोक नाट्य एवं स्वांग भी प्रस्तुत करते हैं:-

§1§ गंवार-जट §2§ गद्दी का स्वांग §3§ बंगालियों की नकल
§4§ पांच मलंग §5§ 'डाऊ' यह पौण ढोने में सहायता करता है।
§6§ हनुमान §7§ भैंरो §8§ काली मां
§9§ घोड़ों का स्वांग §10§ देवी§शक्तिं§ की सवारी

प्रातः चार बजे बाबा सिद्ध चरणों की हस्त पर स्वारी का प्रदर्शन होता है। इसके बाद प्रार्थना की जाती है । इसमें नचार सैकड़ों रुपये अपने नृत्य कौशल से इकट्ठे करते हैं । इसमें उनकी पूरी दस बारह की जुण्डली काम करती है और यह सब प्रायः अपने ही परिवार के सदस्य होते हैं । नचारों ने चमार जाति की प्राचीन लोक संस्कृति को जैसे-कैसे आज तक सुरक्षित रखा है । यह नाच-गान, स्वांग आदि को अपनी 'जद्दी' मानते है । इसी भावना के अन्तर्गत ये लोक गाथाओं के आधार पर भी 'रूपकों' का आयोजन करते है । इन लोक संगीत नृत्य गान के साथ-साथ सम्वादों का अपनी ही भाषा में अनूठा पुट रहता है । ये लोक गाथायें:-

§1§ बाबा भर्तृहरि §2§ कथा रूप §3§पृथ्वी सिंह राठौर
§4§ हीर-रांझा §5§ सोहनी-महिवाल §मिर्जा-साहिबा
§7§ हरि चन्द §8§ चम्पा ।

आदि के गाथा रूपक भी अपनी ही लोक भाषा में विवाह आदि मंगल उत्सवों पर

करते है ।

नचारों के विकास की रूप रेखा

नचार उप-जाति का उद्भव चमार जाति से ही हुआ है जो आज भी अपने आप में मौलिकता लिये हुए है। जिस प्रकार चमारों का भक्तवर्ग इस जाति के धार्मिक समारोहों के विधि विधान एवं अनुष्ठान आदि पाधा और पुरोहित की भान्ति शास्त्रीय विधि विधान की अपेक्षा अपनी ही लोक मर्यादाओं, रस्मों, रिवाजों के आधार पर करते करवाते हैं । उसी प्रकार नचार भी सिद्ध चाणों का 'दाहाजा' और ऐसे ही लोक नृत्य आदि से सम्बन्ध रखने वाले सांस्कृतिक उपक्रम अपनी-अपनी यजमानचारी में ही करते है । इन्होंने अपनी यमजानचारी विधिवत बाटी हुई थी । ये अपनी उस जददी किरतके चौका नाम से पुकारते है । डंगोली के नचारों का "चौका" बारह गांव में है जो "बरनोह " से आरम्भ होकर "चताड़ा" गांव तक है ।

जखेड़ा{निकट मैहतपुर} ऊना के नचारों का "चौका" भी बड़े महत्व का स्थान था । वह भी अब डंगोली के नचारों के अधिकार क्षेत्र में आ गया है । इनका भी एकाध ही घर है । डगोली के सिवाय नचारो की कही भी {ऊना-मण्डल} मे अधिक आवादी नही है ।

वेश भूषा

नचार अपने कर्म के अनुरूप केशधरी थे किन्तु कुछ-दाढ़ी नहीं रखते थे। केश रखने का कारण स्त्री वेश धारण करने का उददेश्य था या फिर साधु महात्मा की भूमिका निभाने का । इनका शरीर हृष्ट पुष्ट और व्यक्तित्व भी आकर्षक होता है । पगड़ी सिर पर बांधते हैं कुर्ता, चूड़ीदार पाजामा या घुटनों तक लड़दार धोती पहनते थें। पाव में पशुओं की खाल बनी हुई जूती पहनते है। इनका नारी समाज चूड़ीदार सुत्थान, कुर्ती, खद्दर की चादर ओढ़नी के रूप में तथा पांव में 'छितरी' पहनता था । डण्डी ब्लाक, तन्दीरा, संगले, गोगरू, झांझर, बाजुबन्द डक्खा टोकरू कोका ये चान्दी के न होकर प्रायः जिस्त के होते थे । परन्तु चमक के लिए चान्दी का पानी भी ऊपर चढ़ाया जो होता था।

आहार

नचार अपने आप को शाकाहारी मानते हैं इन का कहना है कि अपने परम्परागत धर्म के कारण मांस शराब आदि के नज़दीक नही जाते है । परन्तु अब नचार इन सब का उपभोग करने में संकोच नहीं करते हैं । नचार पहले समय में बहुत सादा भोजन करते व करवाते थे। "बेरडा", मण्डल मक्की, बाजरा, चरी

तथा छोलों के आटे की रोटी तथा माश, मूंग, चने, मोठ तथा माड़ी के नक्कों को चक्की में पीस कर नमक मिर्च मिला कर या मिसी रोटी पर नमक और हरी मिर्च पिस कर रख पानी या लस्सी के साथ प्रयोग करते थे। शाक भाजी के रूप में दालें, आम तथा गलगल का आचार आमों के दिनों में कच्चे आमों की चटनी, बाजी, पक्का या भूना आम सब्जी के रूप में प्रयुक्त करते थे । दूध का उपयोग वही लोग कर पाते थे जिनके पास दुधारू पशु होते थे नहीं तो नहीं । दहीं और मक्खन का प्रयोग नहीं के बराबर करते थे । आमतौर पर लस्सी या लस्सी से बना रेड़ू या उसमें प्याज, कचालू डालकर 'पलदा' बना लेते थे । बटाई की किसानचारी में ये अलसी, सरसों, तोरियां तथा तिल पैदावार स्वयं कर लेते थे । परन्तु अब इनके जीवन स्तर में पार्यप्त सुधार होता जा रहा है । बटाई व चकौते पर ली गई जमीन में कपास पैदा कर फिर उसे बेल एव पिंज कर चरखे पर उसे कात कर सूत तैयार कर अपने ही जुलाहे से कपड़ा बुनवा लेते थे तथा स्वयं भी सी पिरोकर अपने पहनने के वस्त्र तैयार करते थे । ये लोग उच्च वर्ग के लोगों से वस्त्र मांग कर भी पहन लिया करते थे ।

आवास

इनके घर कच्चे तथा छोटी आकृति के होते थे । चक्न्दा मिल कर कूट लिया जाता था फिर उसे खड़कना से ढाप लिया जाता था । ये घर बहुत सादा आकृति के होते थे । प्रायः छप्पर का संतुलन एक भारी थम्म पर होता था। मिट्टी के कच्चे भडोले बना कर उसमें अन्न या सामान रखने की व्यवस्था थी । सोने को बांस के सादा मन्जे, बिछाने व ओढने के लिए खिन्द-खन्दोले होते थे । गर्मी में चादर से काम चलाया जाता था ।

विवाह

नचार अपने और चमारों के विवाह आदि मांगलिक कार्यक्रमों पर ही साई बजाने का काम करते थे । जहां भी यह साई बजाने जाते वहां ये मंगल वाद्य बजाते और गाते हुए उस घर में प्रवेश करते थे । तबला वादक विशेष प्रकार की पारम्परिक वेश-भूषा में होता था । अक्सर वह पजी पगड़ी बांधे तथा उसी रंग का कमर में 'पट' बांधे हुए होता तथा एक कपड़े से उसमें ठीक ढंग से बैठाकर तबला बजाता और गाता । तथा कन्सी वाला कन्सी बजाता हुआ उसके पीछे-पीछे उस बस्ती और घर में प्रवेश करता था । इस अवसर पर इस प्रकार के गीत गाये जाते थे जिन्हें शब्द या पद कहा जाता है । जैसेः-

बालका जी पौणा हरिंया, तेरी पूजा करे जग सारा---- आदि

बारात की चढ़ाई के समय जोड़ी वाला जोड़ी बजाता हुआ तथा कंसी वाला कंसी बजाता हुआ सबसे आगे-आगे, उसकी पीछे पगड़ी बान्धे, फूलों का सेहरा बन्धे, गल-पटा डाले तथा बैंत लिए हुए लाड़ा {दुल्हा} होता, उसके पीछे बाराती ।

ऐसे अवसरों पर विशेष रूप में नाच-गान, नकलें तथा लोक नाट्यों का रोचक कार्यक्रम होता था । यह धन्धा भी पहले नचार ही करते कराते थे । इनकी बारात को अपनी ही बस्ती मे डेरा डालना होता था, क्योंकि उच्च जातियों के लोग उन्हें अपनी सराओं का उपयोग नहीं करने देते थे । बारात दूसरे दिन वापिस होती थी । जबकि ब्राह्मणों की बारातें इस काल में चार-चार दिन के वाद विदा की जाती थीं । आम रिवाज तीसरे दिन का था । "लाड़ी{दुल्हन} की पीडी को डोली का रूप दे रस्सों के बीच बली डाल कर दो अपने ही कहार डोली उठाते थे। उसके पीछे दुल्हा पैदल होता था तथा बारात भी। दहेज नाम मात्र के लिए होता था । विवाह में बारात को भोजन स्वयं बनाकर {चावल आदि के रूप में} दिया जाता था । माश, चना तथा पलदा{छाछ} का 'सरूणा' तथा भोजन परोसने का आरम्भ देसी चण के गन्ने की शक्कर से होता था । देव वाद्य नगाड़ा, शहनाई तथा बैंड-बाजा उस समय नचार अपने विवाहों पर नहीं बजा सकते थे । इनके लिए सुकपाल {पालकी} तथा डोली का उपयोग भी पूरी तरह वर्जित था । स्वाधीनता के उपरान्त यह अन्धेरा धीरे-धीरे छंटता जा रहा है यह वर्ग भी सामाजिक स्तर पर अपने आप को बड़ी मन्द गति से ला रहा है । लेकिन इनका बहुत वड़ा वर्ग आज भी शेष समाज से बहुत पीछे है ।

अर्थ व्यवस्था

पहले नचारो की अर्थ व्यवस्था नाच गानों, मजदूरी, अर्ध बुआई पर खेती बाड़ी बाण बटन, शोधे हुए चमड़े से देसी जूतियों के काम धन्धों पर आधारित थी किन्तु अब स्थिति में आशाजनक सुधार हो रहा है ।

शिवमाला का गावा

विजय दशमी के दूसरे दिन से ही शिब माला का गावा आरम्भ होता है । इस माला के कार्यक्रम के अन्तर्गत रात भर गांव की अलग-अलग आबादियों

में जा कर यह नचार वेश बना कर नाचते हैं । स्त्री का वेश भी पुरूष द्वारा ही धारण किया जाता है । गावे के साज, डमरू सारंगी, हरमोनियम, ढोलकी या तबले का प्रयोग किया जाता है ।

इसके लिए इन्हें अन्न, वस्त्र रूपया-पैसा भी दिया जाता है । इनकी ही लोक भाषा में इनके गावे के बोल:-

'पक्ख पुन्या दियां चाननियां-असीं माला नचण आये,
जागो सुतेओ लोका जागो, असीं माला नचण आये।
चन्दा ओ तेरीया चानणिया, तारेओ ो तेरीयां लो ।
किस ने साजे नराते, किसने साजीयां माला,
ब्रह्म ने साजे नराते, विष्णु नः साजियां माला।आदि....।।

इस प्रकार नचार इन कार्यक्रमों के द्वारा भी अपनी पारिवारिक अर्था व्यवस्था को सुचारू बनाने का प्रयास करते थे और अब भी करते हैं किन्तु अब इनके साथा या स्वतन्त्र रूप में चमार लोग अर्था लाभ के कारण इस काम को करने लगे हैं । पहले समय में इस गावे का सम्बन्धा नचार जाति ही से था । नचार शुभ कार्य का प्रारम्भ इस प्रकार से करते हैं :-

इक्को माई-जगत बिहाई, तीन चेले परवान ।
इक संसारी, इक भण्डारी, इक ला बैठे दीवान, ओ माई-,
इसमें कौन संसारी, कौन भण्डारी किन लाया दीवान ।

इनकी भाव अभिव्यन्जना का भाषा परक रूप देखिये :-

इक्को नाम सहस (सहस्र) जयीं दा, जिस दा नाम गौर उठाईये,
जल दे ऊत आंधरत उठाईये ।
चार युग तो पहला, नौ युग धुन्धूकार दे
खत्म हो गये, नाहीं धरती-नाहीं समान नाहीं चन्दा नाहीं सूरज,
अक्खीं किसे न देखेया कुदरती लक्खीं दा ।
चारों तरफ पहाड़, धरती न डोलदी,
मिट्टी दा बनाया- बिच्चो कुदरत बोलदी ।

कारें:

इस क्षेत्र में वर्ष में एक बार नाथा सिद्ध परम्परा के अन्तर्गत कारों का आयोजन होता है । 'कारें' रक्षा-बन्धन से आरम्भ होकर, गूग्गानौमी तक होती हैं।

इन कारों का सम्बन्ध जहर पीर गुग्गा के साथ तथा सिद्ध भरथरी, बालकनाथ, नाहर सिह, सींडू बाबा, देवी आदि-आदि से अनुबन्धित है । इस में सात के लगभग वैयती डौरू कैसी, सारंगी तथा थाली बजा कर अपने इष्ट देव सिद्ध की स्तुतिगान करते हैं । दो कार लेने वाले इन्ही वैतियों में से होते हैं । इस का मुखिया "चेला" होता है जिसने 'छत्र' धारण किया जाता है इसी के साथ वह झोली, चिमटा, फौडी, संगल, कड़छी (धूप धुखाने के लिए) भी धारण करता है। भेष भगवां, भोजन एक समय, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन आदि इसमें सब सम्मिलित हैं । गूग्गा नवमीं के दिन "रोट" सिद्ध को चढ़ाया जाता है प्रति दिन छत्तर को पूजा के रूप में श्रद्धालू भक्त ध्याड़ी देते हैं । इसमें सभी को भोजन दिया जाता है किन्तु इससे पहले सिद्ध की आरती की जाती है उसके बाद भोजन तत्पश्चात् फिर "गुग्गा गाथा" गाई जाती है । यह क्रम इच्छानुसार ही किया जाता है । यह काम भी नचार ही पहले पहल करते थे परन्तु इन में अपवाद स्वरूप अन्य डोम एव चमार आदि जातियां भी सक्रिय भाग लेती थीं क्योंकि इसका सम्बन्ध आजीविका से गहरे रूप में जुडा है लेकिन आज भी इस गायकी में श्रेष्ठतम है ।

लोक वाद्य

नचार अपने कार्यक्रमों में सारंगी, डोरू, कांसी, छोटा नगारा, ढोलकी तथा नाद आदि का ही उपयोग करते थे लेकिन अब तबला तथा हरमोनियम का प्रयोग भी करने लगे हैं।

पंज मलंग

यह एक तान्त्रिक मनोभावात्मक-मुस्लिम प्रभाव से प्रभावित तन्त्र उपचार है । नचारों ने ऐसे कुछेक मन्त्र लोक कविता के रूप में अपनी परम्परा के अन्तर्गत मौखिक रूप में सुरक्षित रखे हैं । जैसेः-

चाली चालीस-पंज शेर, "अलवी" कहे महम्मदा,
किसी दा इक बेटा, किसी से दो बेटे,
असीं खाली क्यों चले, जाओ अल्ला के दरे, या खुदा सानू भी बेटा बक्शो।
चक्के पुराने कागज, अल्ला लिखित करे,
लिखदा-लिखदा थक गया, फिर भी कलम न मुड़े,
पंताली यन्त्र लिख, मुहम्मद अग्गे धरे,
जाओ मुहम्मद अलवी नो घोल पिला दो, ।

फिर मुहम्मद घर को मुड़े, पताली यन्त्र घोल पिला दिते
कुछ समय बाद-पताली बच्चे आ उसदी गोद पड़े
अलवी कहे मुहम्मदा ऐह बच्चे मैते मत पले ।-----।
हुक्म हुआ चाली मलंगा-जा दिल्ली गजा करो,
पांव लाही दस्तार-अपणे-अपणे नंग ढके,
गुमटे ते बाहर हुए, दिल्ली जान्देआ हुक्क तिल मिला,
घोट मलंगी पीता, रब्ब रवाना कीता,
खबर होई चताली मलंगा नो, मक्के अन्दर मौत पई-
उत्थे हाजी बहुत मरे, चताली मलंग मक्के नो सीधे हो चले-
जेड़ी हवा होगीः इनको देख बन बकरी रूप धर छिपे । आदि .....।
मुहम्मद साहब देखदा दस्तार, दस्तार मत मिले,
माड़ी कीती मुण्डेओ, मेरी दस्तार क्यों वेद धरे, गुस्सा हो जवर अली नः
पगदा लड़ फ़ाड़या- लौ पेचे पूरे करे । .इत्यादि ।

इसी प्रकार "वीरा" लोक अग्नि नृत्य के रूप का एक स्तुति अंशः-
बोलो जी वाखरू अगम अगोचर तू परमेसर
तेरा अन्त किने ना पाया,
पहली कुजरत करते नः साजी, चन्द सूरज दो दीपक साजे,
दिन ते रैन बनाया चानण कर दिखलाया .....इत्यादि ।

भाषा का संस्कृत प्रभाव तथा हिन्दु-दर्शन तत्त्व का रूप भी इसमें देखा जा सकता है । इस लोक नाट्य में मुस्लिम भावधारा की तान्त्रिकता "पांच मलंग" कविता में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है बोरा लोकनाट्य पर विशेष शोध की आवश्यकता निरन्तर बनी हुई है ।

वीरा अग्नि नाट्य की मूल कथावस्तु का आधार "सिद्वचन्नो" है।सिद्वचन्नो जाति से क्षत्रिय था । यह मथुरा नरेश कंस के अखाड़े का सबसे बली पहलवान था। बल्ली-दोनों, दहांम्रवली, चण्डुल-दानों सिद्व चन्नों ये चार भाई थे । कंस के अखाड़े में जब श्री कृष्ण लाख प्रयत्न करने पर भी इसे न हरा सके तब नीति निष्णात कृष्ण ने गुप्त रूप से चन्नों की पत्नी से उनकी शक्ति का रहस्य, जान लिया । चन्नों की शक्ति का केन्द्र एक विशाल पीपल का बृक्ष था उसकी पत्नी का कहना था कि जब तक पीपल की जड़े नहीं हिलेंगी तब तक मेरे इस महाबली पति को पराजित तो क्या, इसे कोई हिला भी नहीं सकेगा । मेरे पति की जड़े पाताल और चोटा अम्बर में है।

तब भगवान कृष्ण ने सिउंक को जन्म देकर उसे आदेश दिया कि तुम उस

पीपल की जड़ों को खोखली कर दो । पति का सारा रहस्य खुलने की बात सुनते ही महाबली चन्नों ने कुक्डों को जन्म दिया, और उन्हें आदेश दिया कि तुरन्त सिउंक को चुग लो । फिर भी पीपल की मूल जड़ में सिउंक लगी रह गई । जिस कारण पीपल झूला खा गया और उधर कृष्ण ने भी चन्नो के गोडे लगा दिए । इसके साथ ही चन्नों श्री कृष्ण की शरण में आ गया चन्नों के अछूत बनने का कारण- यह है कि घटना के अनुसार मथुरा में ऐक विशालकाया/हथिनी मर गई । वह किसी से भी उठाई नहीं जा सकी, तब इसके भाईयों ने इसे भेजना चाहा । इसने कहा, कि मैं हाथिन को उठाकर आकाश में उड़ा दूंगा । पर इस नीच कर्म को बाद आपने मुझे अपने साथ मिलाना नहीं है । उसके भाईयों ने कहा कि अगर तुम तीन पहरों के बीच आ जाओगे तो हम तुम्हें अपने साथ मिला लेंगे । इस पर उसके भाईयों ने उसे तीन वचन दिए जिसका गवाह डूमणा था। सिद चन्नो ने हाथिनी उठाकर आकाश में उड़ा दी । पर जब वह घर लौटा तो भाईयों ने उसे अपने साथ मिलाने से इन्कार कर दिया । डूमणा गवाह भी गवाही से मुकर गया । चन्नों ने डूमणे को शाप दे दिया कि तुम्हारे ऊपर अब संसार में कोई विश्वास नहीं करेगा । जो तेरा खायेगा उसे दरगाह में भी शरण नहीं मिलेगी । बहुत कहने पर उसके भाईयों ने चौथे युग में अपने साथ मिलाने का उसे वचन दिया । फिर व्याकुल चन्नों श्री कृष्ण की शरण में गया । भगवान ने उसे वर दिया कि तुम संसार में सबसे बली सिद्ध माने जाओगे, तथा तम्हें उच्छित जीवन और मौत देने का अधिकार रहेगा । कलयुग में "दहाजा तेरी मन्नत का प्रमुख रूप रहेगा । तभी से परम्परानुसार द्वापर से महाबली सिद्ध चन्नों की यह मन्नत गांव, पशु एवं जन धन की सुरक्षा के लिए गुर के निर्देशन में "घी और मीठे" की धूनी धुखाकर, ढोल बजाते हुए, पहले गांव की पश्चिमी सीमा पर बली देती है । उसके बाद-"गढ़ा" पूजन होता है । तत्पश्चात् "कुन" अर्थात् "सिद्धचन्नो" के स्थान पर विधिवत वाद्यों की मधुर ध्वनि के साथ-2 स्तुति प्रार्थना की जाती है।

इसके पश्चात् सहभोज होता है । फिर सारी रात "दहाजा उपक्रम" शुरू होकर पूरी रात चलता है । जिसमें नाच, गान, स्वांग, गाथा, सम्वाद, नकलों आदि-आदि का विस्तृत कार्य-क्रम होता है । जिस में बौरा नाट्य का प्रदर्शन किया जाता है ।

बौरा बोरा दापर युग में एक महातान्त्रिक ब्राह्मण कुमार था इसके तान्त्रिक गुरू भगवान कृष्ण थे । भगवान श्री कृष्ण ने चन्नों को "कंस" के अखाड़े में हुए मल्ल युद्ध में पराजित कर दिया । फिर महाबली चन्नों श्री कृष्ण जी की शरण में आ गया ।

एक बार सिद्ध चन्नों की किसी भयंकर रोग के कारण शरीर की दशा बहुत गम्भीर हो गई । तब चन्नों ने महर्षि नारद को भगवान कृष्ण के पास भेजा । उन्होंने ऋषि वर को अपने परम शिष्य ब्राह्मण कुमार के पास भेज दिया, क्योंकि सिद्ध चन्नों के रोग का उपचार केवल तान्त्रिक विद्या द्वारा ही होना था । जिसे केवल वही ब्रह्मण कुमार कर सकता था । देव-योग से जब ब्राह्मण कुमार के घर पहुंचे तो मालूम हुआ कि उस की तो मृत्य हो गई है । नारद ने यह सूचना भगवान कृष्ण को दी, तब वे स्वयं ही वहां पहुंचे जहां उस ब्राह्मण की चिता जल रही थी । जब सब लोग उसका अग्नि संस्कार कर चले गए तो रात के अन्धेरे में भगवान कृष्ण ने अपनी तन्त्र-मन्त्र-शक्ति से सल से जीवित कर उस ब्रह्मण कुमार को बाहर निकाल लिया ।

बौरा उस समय आग की भान्ति जल रहा था । वह मुंह से भी आग उगल रहा था । उसका अग्निमय शरीर भयंकर आकृति में नाचता हुआ नंगा ही भगवान श्री कृष्ण के समक्ष आकर खड़ा हो गया और भगवान से आदेश मांगने लगा । भगवान ने उसे आदेश दिया कि तुम तुरन्त महावली चन्नों को रोग मुक्त करो ।

भगवान् के आदेश से बौरा ने महाबली सिद्ध चन्नों का तान्त्रिक उपचार कर रोग मुक्त कर दिया । तत्पश्चात् वह फिर भगवान श्री कृष्ण के पास आत्म-शान्ति के लिए पहुंचा । भगवान ने "बौरा" को कहा कि तुम्हें- आत्म-शान्ति सिद्ध चन्नों ही दे सकता है। अतः वह फिर तुरन्त सिद्ध चन्नों के पास पहुंचा । तथा अपने लिए शान्त स्थान की मांग की । पर सिद्ध चन्नों ने अपनी 'तीन सौ साठ' सिरकियो में उसे प्रवेश देने से इन्कार कर दिया किन्तु अपने प्रति किए उपकार को ध्यान में रख, उसे अपने दल का 'अगुआ' घोषित कर दिया । विशेष तान्त्रिक अनुष्ठानों के अवसरों पर "कुन्न" पर पूजन बाद में होता है, पहले "गढे" का पूजन होता है।

"दहाजा" उत्सव पर "बौरा" नृत्य अपनी परम्परागत-स्थिति में अद्वितीयता रखता है । लोग इस तान्त्रिक नृत्य को बहुत ही तन्मयता से देखते हैं ।

पात्र परिचय :

गुरू, गुर-सहायक, बौरा, नारद, छः वाद्यवादक एवं प्रक्ता के रूप में दल का मुखिया । कुल पात्र संख्या ग्यारह है ।

भगवी वेशभूषा में गुर छतर धारण कर गुगल धूप की धूनी धुखा कर सर्व प्रथम स्तुति करता है जैसे :-

गुर गुरी मन्याद, पी तू प्याल तू।
लोह तू- कदम तू, इक सांई-
सहा सीं धाई-प्यारे खुदा,
पड़दः कितियां यातः धरो गई बला ।
आद के जुगाद, जुगाद के मण्डल,
मण्डल के राजा कैलाश, राजे कैलास चन्द का बेटा,
सिद--चन्नो ।

जिस दी-पताल जड़ां आकाश चोटी,
नीले-घोड़े का-स्वार तेरे सिर पै-
सोने दा छतर आदि आदि ....।

इसके पश्चात् तेल मिश्रित-कालख को पूरे शरीर पर मल कर लाल निशानों से लगी हुई आग को दिखाते हुए, माथे पर "लाल-बिन्दला लगा" अपनी भयंकर आकृति में, सिर पर आग जलाये हुए, पांव से घुंघरू का स्वर निकालते हुए §केवल औपचारिकता के लिए अंगोछा पहने§ नंगा बौरा नारद के साथ अभिनय पूर्ण नृत्य की वेशभूषा धारण किए मंच पर प्रवेश करता है । तथा संगीत और गीत की स्वर लहरी पर तुरन्त यह नृत्य आरम्भ हो जाता है ।

सब से पहले "बौरा" चिमटी से मस्ती में नाचता हुआ आग भक्षण करता रहता है । फिर अपनी चर्म उन्मस्ती में वह मुंह से निरन्तर आग उगलना आरम्भ कर देता है । नृत्य गीतों के बोल यह हैं:-

बौरा रे बौरा साईंदा, बौरा रे बौरा साईंदा,
नच मेरे बौरया-अग्नि के संग, नच मेरे बौरेया-अग्नि के संग ।
लालां के लाल आये, लालां के लाल ।

आयेआं-ओ बौरेया, साईंदे बौरेया
इक्कीं तेरिअः कज्जल, मत्थः बिन्दला लाल ।
बौरा-ओ-बौरा-साईंदा । आदि ....।

इसी प्रकार की एक और तान्त्रिक-उपचार-नाट्य-विनय-साधना गीति भी है :-
§दलीप नचार की ही भाषा में§ :-

ढाई घड़ी लाल फकीरे दा- बरम-बौड़ना ।
ढाई घडी बौरे दः बरन बौड़ना ।

कबूतरां दा जोड़ा तेरे नाल चलेगा ।
तू डेरे दा सरदार-वौरा।
तू डेरे दा सरदार ।

तितरां दा जोड़ा तेरे नाल चलेगा गादा-बताल तेरे नाल चलेगा,
कच्ची मसाणी तेरे नाल चलेगी, तू डेरे दा सरदार वौरा,
तू डेरे दा सरदार ।

महाकाली तेरे नाल चलेगी, मडी मसाणी तेरे नाल चलेगी
हनुमान-वीर-तेरे नाल चलेगा, तू डेरे दा सरदार वौरा ,
तू डेरे दा सरदार ।

भैरो छडिया तेरे नाल चलेगा ख्वाजा वीर तेरे नाल चलेगा
बाबा सिद्ध चन्नों तेरे नाल चलेगा, तू डेरे दा सरदार वौरा,
तू डेरे दा सरदार ।

लोह बली तेरे नाल चलेगा, तीन सौ साठ सिरकी तेरे नाल चलेगी
गद्दी मितर तेरे नाल चलेगा,तू डेरे दा सरदार वौरा,
तू डेरे दा सरदार ।

तंन्त्र साधना-विनयः-

लहौरे भटौरे अन्दर थानः तां तःवौड़ना,मकेरिया दसूहे अंदर थानःतां तः वौडना,
पूबोवाल जागदी जोत-ता तःबौडना, बौड की निगाह-करनी--।

मेरी फरयाद तेरे पास, तेरी फरयाद सच्ची दरगाह बीच,
मैं सेवक तेरा, तू पिता मेरा
जितथाः सिमरा, उत्थाः तूं सहाई मेरा ।
मैं झूठ करां, तू सच्च करां ।
बन्दा गन्दा हरबेलः,
मैं भलन हार, इसकी माफी ।

इस प्रकार यह वौरा अग्नि नाट्य/ग्राम्य जीवन में अपनी तान्त्रिक सांस्कृतिक भावना, को लिए द्वापर से आज तक डंगोली की नचार जाति द्वारा सुरक्षित रखा गया है ।

उद्देश्यः-

"वौरा" एक महत्वपूर्ण तन्त्र विद्या के साथ-साथ लोक-मनोरंजन का मनोवैज्ञानिक अद्वितीय "अग्नि नृत्य" है । इसकी ईष्ट साधना भूत-प्रेतों के बचाव का उपचार माना जाता है। "बोलातथा रबल, नचार इस 'यन्त्र-मन्त्र तन्त्र विद्या' के विशेषज्ञ

चन्दरौली

डॉ० शमी शर्मा

"चन्द्रावली" शब्द चन्द्र आवली का सन्धियुक्त रूप है । इस का अपभ्रंश रूप चन्दरौली है । चन्दरौली नृत्य का सम्बन्ध चन्द्र तिथियों के होने से ही इसे चन्द्रावली की संज्ञा दी गयी । कालान्तर में चन्द्रावली बिगड़ कर 'चन्दरौली' कह कर पुकारा जाने लगा । चन्द्रावली शब्द कांगड़ी लोक-काव्य में 'गुजरियां' लोक गीतों में भी प्रयुक्त हुआ है जहां चद्रावली गोपी का नाम है कृष्ण-गोपी संवाद में चन्द्रावली का कृष्ण से संवाद है

कृष्ण- चन्द्र बीच ढे चन्द्रावली महरी लोग बोलगे मथुरा नगरी तू गुजरी मेरे मन वसीए ।

चन्द्रावली गुजरी- अनी मेरे कृष्ण ! मैं गुजरी राजे कंसेदी मेरे कनें तेरा क्या झगड़ा ।

चन्दरौली नृत्य का सम्बन्ध चन्दरावली के साथ होने से चन्द्र तिथियों का प्रसंग एवम् रातों का वर्णन भी आता है । किन्तु अधिकांश गान माता की भेटों के रूप में गाया जाता है । चन्दरोली लोकनाट्य में उस का लोक धर्मी स्वरूप स्पष्ट होता है। लोक जीवन से इस का घनिष्ट सम्बन्ध है । उत्तरायण मकर राशि में भगवान भास्कर के प्रवेश प्रसन्नता में ही यह नृत्य घरोंके आंगनों में अभिनीत होता है । इसमें ग्राम्य लोक संस्कृति दृष्टिगोचर होती है । लोक धर्मी इस लोक नाट्य में नृत्य नाट्यात्मकता का जनमन के अनुरंजन के लिए अभिनय किया जाता है ताकि दर्शक देखते हुये हंसी से लोट-पोट हो जायें । इसमें अभिनय करते नृत्य के साथ-साथ लोक गीत गाते हैं । संभाषण या संवाद इस नृत्य में नहीं होता । वस्तुतः यह प्रहसनात्मक गीति नाट्य है। माता की भेंटें तथा अन्य लोक गीत गाये जाते हैं और प्रहसनात्मक हास-परिहास इसके पात्रों के अभिनय कौशल के ऊपर निर्भर करता है ।

इतिहास

मुसलमानों के आक्रमणकाल बारहवीं शताब्दी में जब संस्कृत नाटकों का अभाव हो गया तो उस समय लोक धर्मी लोक नाट्यों का उदय हुआ । उस समय लोग अपने घरों गांव में ही इस ललित क्रिया को संचालित करने लगे । विविध उत्सवों, त्यौहारों के अवसर पर इन का प्रदर्शन क्षेत्र विशेष की परिसीमाओं में परम्परा रूप में बंध गया। भारत में विधर्मियों का शासन स्थापित हो जाने पर संस्कृत नाटकों के स्थान पर

प्रान्तीय भाषाओं में नाटकों की रचना होने लगी । कालान्तर में लोक धर्मी परम्पराओं के द्वारा जन अनुरंजन होने लगा । इसके परिणाम स्वरूप क्षेत्र विशेष में लोक नाट्य अभिनीत होने लगे । संस्कृत के नाटकों में विट, विदूषक, शकार, पीठमर्दक आदि कुछ विशिष्ट पात्र होते हैं जो नाटक में विशेष अभिनय, धूर्तता छल छद्म द्वारा हास्यरस का संचार करते रहे हैं । विदूषक को देखते और सुनते ही हंसी आ जाए, यही लक्षण संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों में विदूषक का रहा है । विदूषक मूर्ख होता है । उसकी अभिनय क्रियाएं धूर्तता से भरी होती हैं । लोक नाट्य में यही विदूषक पात्र की क्रियाएं और अभिनय चला आ रहा है । कभी-कभी तो यह धूर्तता अश्लीलता की हद तक पहुंच जाती है। चन्दरौली के "डण्डू" पात्र का सम्बन्ध इससे ही है । वस्तुतः चन्दरौली लोक नाट्य में डण्डू की विशेष भूमिका रहती है । उसके अभिनय कौशल और वेशभूषा सज्जा के ऊपर ही चन्दरौली नाट्य की सफलता निर्भर करती है । वस्तुतः चन्दरौली का प्रचलन जहां एक ओर ऐतिहासिकता पर निर्भर करता है वहीं दूसरी ओर इसका सम्बन्ध ऋतु परिवर्तन और बेहद शैत्य से विमुक्ति होने पर प्रसन्नता का द्योतक है । चन्दरौली नाचने की यह परम्परा अत्यधिक शीत के मास में शरद् ऋतु से छुटकारा पाने हेतु होती रही है ।

अभिनय समय

चन्दरौली का नाट्य पौष मास में होता है । इस महीने में यहां के झीवर, जुलाहे जाति के लोग चन्दरौली नृत्यघर-घर जा कर प्रस्तुत करते हैं । इसका प्रचलन कांगड़ा हमीरपुर में पारम्परिक रूप से चला आ रहा है । वस्तुतः इस पौष महीने का नाम ही "चन्दरौलिया बाला महीना" यह कह कर पुकारा जाता है । इस लोक नाट्य की परिसमाप्ति पर ही मकर संक्रान्ति का पर्व आता है । मकर संक्रान्ति से ही उत्तरायण का आरम्भ माना गया है । शुभ धार्मिक कार्य संस्कार उत्तरायण में ही होते हैं । उत्तरायण से ही देवताओं का दिन आरम्भ हो जाता है और छः मास के पश्चात् देवशयनी एकादशी को देवताओं की रात प्रारम्भ हो जाती है । चन्दरौली नृत्य का अभिनय देवताओं के दिन से पूर्व प्रसन्नता अभिव्यक्त करने से रहा है। इस प्रसन्नता की अभिव्यक्ति कि अब दिन बड़े हो जायेंगे और शीत की परिसमाप्ति पर वसन्तागमन के अच्छे दिन आ जाएंगे लोक नाट्य के द्वारा होती है विशेष वर्ग के लोग अपनी चन्दरौली नाटक मण्डली के साथ लोगों के घरो में जाते हैं और लोक नाट्य एव लोक गीतों के द्वारा जन-जन का घर घर में अभिनन्दन करते हैं । इसमें जन अनुरंजन के लिए हंसी का समावेश रहता है । दूसरी ओर लोक गीतों में धार्मिक भक्ति परक भेंटगान का आधान होता है। नृत्य नाट्यात्मकता में जहां हास्य रस होता है वहां लोकगीत में उसका सम्बन्ध भक्ति भावना, देव श्रद्धा से आबद्ध होता है । पौष की संक्रांति से यह गीति नाटय

आरम्भ होता है और पूरा एक मास मकर संक्रान्ति तक और पौष मासान्त लोहड़ी से पूर्व यह लोक नाट्य सामाप्त हो जाता है । घर-घर जा कर लोगों से नृत्य नाट्य के द्वारा यह मण्डली अन्न एकत्रित करती है । लोग प्रसन्नतापूर्वक अन्न तथा कुछ दक्षिणा दे कर इन्हें विदा करते हैं । अन्त में इस एकत्रित अन्न में से कुछ सामूहिक भण्डारे के लिए रख कर परस्पर बांटते हैं ।

चन्दरौली के पात्र

चन्दरौली मण्डली में पाच छः पात्र होते हैं । इसमें मुख्य कलाकार दो होते हैं जो अभिनय प्रस्तुत करते हैं । शेष पांच छः वाद्य-यन्त्रों से सुसज्जित लोक गीत गाते हैं । दो प्रमुख कलाकारों में एक "डण्डू" और दूसरा "चन्दरौली" होता है । "डण्डू पात्र विदूषक का अभिनय करता है । उसकी सज्जा वस्त्र परिधान हंसाने वाले होते हैं प्रायः यह विविध रंगो की लीरें चिथड़े कपड़े अपनी कमर में बांधे हुये मुख पर मूछें लगा कर सिर पर टोप, टोपा बांधे हुये एक हंसोड़ व्यक्ति होता है । बांस का एक डण्डा जो ऊपर से चार की संख्या में फड़ा हुआ होता है, डंडू का विशेष हथियार होता है अपने हाथ सिे इसे थपनकाते हुये यह चटपट की ध्वनि करता है । अतः "चटपटा" इस की विशेष ध्वनि यन्त्र होता है । जिस की आवाज़ पर यह छलांगे लगाता हुआ, बंदरों की भान्ति कूदता हुआ नाना विध कौशल नृत्य नाट्यात्मकता से लोगों को हंसाता है। कभीं खड्मस्तियां करता है । इसकी कमर पर जो पटका बंधा होता है उसमें सींग के आकार का एक काला टुकड़ा भी लटका या फंसा होता है । इससे चलते समय यह एक अजीब सा लगता है जिसे लोग देखर कर हंसते हैं । कभी उससे ध्वनि भी करता है ।

'चन्दरौली' का दूसरा पात्र चन्दरौली स्त्री नायिका होती है । यह पुरूष ही स्त्री पात्र का अभिनय करता है । इसकी वेशभूषा एक रूपसी नारी की होती है जिस के परिधान सज्जा यहां की स्त्रियों की पारम्परिक होती हैं । कमीज, घगरी, रीढ़ा चादरू गोटा लगा और गले तथा नाक कान में स्त्रियों के भूषण साज सिंगार नवोढ़ा से होते हैं । अच्छी चन्दरौली तो 'बेसर' या 'बालू' डाल कर चलती है और कर्णभूषण भी होते हैं । माथे पर बिन्दिया और पूर्ण नव बधू सी श्रृंगार युक्त यह स्त्री पात्र अपने नृत्य का कमाल कर के दिखाती है । चन्दरौली का नृत्य यहां की स्त्रियों जैसा होता है । जिस में शिष्टता शालीनता दीष्टगोचर होती है । जबकि डंडू पात्र में अभद्रता, धूर्तता, और कामुक चेष्टाएं कभी चन्दरौली का घूंघट उठाता है, कभी उसकी ओर घूर-घर कर देखता है । कभी उसे धक्का या कंधा मारता है। साथ ही अपनी चेष्टाओं और मस्तीयों से को हंसाता है। चन्दरौली स्त्री नाच में शालीनता और नृत्य प्रवीणता अभिनय

कौशलता का निर्दशन होता हो । नृत्य के साथ ये भी कुछ लोकगीत की पंक्तियां बोलते हैं । नृत्य मदलू या तबले की थाप पर आरम्भ होता है । यह आवश्यक नहीं कि "डण्डू" और चन्दरौली भी लोकगीत गायें क्यों कि उसके गाने के लिए अन्य पात्र अर्ध वृत्ताकार में खड़े होते हैं । गीत भेंट गाने का दायित्व उन पर होता है जब कि नृत्य अभिनय का डण्डू और चन्दरौली पर ।

वाद्ययन्त्र चन्दरौली नृत्य के अन्य पात्र 'बजंतरी' 'भारी' और मण्डली का 'सरगना' संचालक होते हैं । वाद्य में एक व्यक्ति 'मंदलू' या तबले का वादक होता है । 'मण्दलू' एक मिट्टी का घड़ा नुमा पात्र छोटा चमड़े से मढ़ा हुआ होता है. जिस के एक ओर से गम्भीर आवाज़ ध्वनित होती है जिसकी थाप तबले की धामे से मिलती है । किन्तु उनकी ध्वनि में बहुत अन्तर है । मंदलू की ध्वनि गम्भीर होती है। अब मंदलू का प्रचलन चन्दरौली में कम हो गया है । दूसरा पात्र चिमटा बजाने वाला होता है । अब तो कहीं कहीं पर हरमोनियम भी साथ ले जा रहे हैं । तीसरा बादक कंसीयों वाला होता है । इसकी ध्वनि से चन्दरौली का वातावरण मुखरित हो जाता है प्रायः कंसीयों वाला बादक ही संचालक होता है । चौथा पात्र 'भारी' होता है। यह अन्न को उठा कर चलता है। कभी-कभी दो भारी होते हैं । किन्तु भारी को भी मण्डली में खड़े हो कर गायन में सुर मिलाना पड़ता है । ज्यों ही मण्डली गांव में निकलती है छोटे बच्चे तमाशा देखने के लिए पीछे हो जाते है । जैसे कोई मदारी कोई खेल करने के लिए आया हो। बहुत खुश होते हैं । हो भी क्यों न यह पारम्परिक लोक नाट्य भी कोई कम चीज़ नहीं है । कई तमाशाओं से भी कलात्मकता में बहुत ऊंचा है ।

चन्दरौली के वाद्य यन्त्रों में एक विशिष्ट वाद्य 'घड़याला' भी होता है घड़याला घड़े पर कांसे की थाली रख कर कड़े से ध्वनि थाली पर की जाती है और दूसरे हाथ से थाली के मध्य में एक हाथ धर कर थाप दी जाती है । इस प्रकार से जो ध्वनि निःसृत होती है। क्या कमाल होता है उस झंकार का, जो अन्य मंदलू और कंसिया के साथ ध्वनित होती है । किन्तु घड़याला असुविधाजनक होने से मण्डली के साथ प्रायः नहीं लिया जाता । इसका वादन किसी एक स्थान पर जहां से चन्दरौली नाचने चलती है वहां ही किया जाता है । जिस समय चन्दरौली मण्डली अपने किसी एक घर से अपना कार्य आरम्भ करती है। पूजार्चन अपने ढंग से किया जाता है । थाली भी सजाई जाती है । देवी देवताओं को धूप दिया जाता है । कुछ स्थानों पर नाचने वाले के घरों में यह परम्परा पीढ़ी दर पीढ़ी चलती है । चन्दरौली नाचने की प्रथा लोहड़ी गान से भी जुड़ी है । इस महीने में ही 'लुकडियां' गाने का भी प्रचलन रहा है जो अब लुप्त सा हो गया है । इसके साथ साथ ही कुमारियां जमींदारों की कन्यायें इस क्षेत्र में 'लुकडियां'

गाया करती थी और सारा महीना कई दल दूर-दूर से धान एकत्रित किया करते थे।

वास्तव में बह मकर संकान्ति माघी जब सूर्य मकर राशि उत्तरी गोलार्ध उत्तरायण में शुभ पदार्पण करते हैं उसके स्वागत अभिनन्दन में ही अभिनीत होता है ।

लोक गीत चन्दरौली में संवाद नहीं होते । यह तो गीति नाट्य है । गीत की लय और वाद्य की थाप पर केवल नृत्य प्रदर्शित करते हुये अभिनय किया जाता है। इसमें दो पात्रों की वेशभूषा और अभिनय के कारण ही यह नाट्य संज्ञा में आता नहीं तो यह खाली लोकगीत ही रह जाता है । 'डण्डू' के वार्तालाप कम होते हैं केवल हूं-हूं, हां हां छावा, छावा, छावा, आदि की बोलियां ही चटपटे की ध्वनि पर लगाई जाती हैं और बंदरों की भान्ति उछलना, छलांग, कला-बाजियां आदि लगाने से ही एक हास्य मनोरंजन् कौतूहल तमाशा सा उत्पन्न किया जाता है । कई बार कोई छोटी-मोटी बात भी कर दी जाती है। चन्दरौली का नृत्य घुंघरू डालकर थाप से होता है । उसमें नृत्य की विविध मुद्रायें प्रदर्शित की जाती हैं जो प्रायः यहां की स्त्रियों में प्रचलित हैं । मंचीय व्यवस्था का कोई विशेष आयोजन नहीं होता । घर का आंगन ही मंच होता है। उसमें एक अर्ध वृत्ताकार तीन-चार गायकों की मण्डली खड़ी हो जाती है और मध्य मे "ड़ण्डू" और "चन्दरौली" नाचना अरम्भ करते हैं । लोक गीत "भेंटां" आरम्भ होती हैं जिस में माता दुर्गा, ज्वालामुखी की भेंटें होती है जिसकी शब्दावली इस प्रकार है :-

तू दूर्गा मेरी आद भवानी
बोले अमृत वाणी वे ।
किस देव ने पैदा कीत्ती
किस देव ने मानी वे ।
ब्रह्म देवने पैदा कीत्ती
विष्णु देव ने मानी वे ।
कौन देव तेरी करे रसोई
कौन देव भरे पाणी वे ।
अग्नि देव तेरी करे रसोई
पवन देव भरे पाणी वे ।

प्रत्येक पंक्ति को दो बार गाया जाता है । गायन की शैली प्रायः प्रत्येक "चन्दरौली" मण्डली की एक होती है । इसमें गायन की लय को अपनी सुविधा के अनुसार बढ़ाया घटाया जा सकता है । एक अन्य चन्दरौली भेंट गीत की पंक्तियां इस प्रकार से हैं :-

जगदीर रहे जगदी तेरी जोत माता तेरी जगदी रहे
नगे नगे पैरा मैय्या अकबर आया

सूने दा छत्तर चढ़ाया माता
जोत तेरी जगदी रहे
कुन्नी-कुन्नी माता तेरा भवन बणाया
कुन्नी चौंर झलाया ए
पंजां पांडवां तेरा भवन बणाया
अर्जन चौंर झुलाया ए
जगदी रहे, जगदी रहे तेरी जोत माता जगदी रहे ।।

उक्त दोनों गीतों का रूपान्तर इस प्रकार है :-

हे दुर्गा! तू माता आदि शक्ति भवानी के रूप में है । अपनी अमृत वाणी से बोलती है । तुम्हें किस देवता ने पैदा किया है शक्ति स्वरूपिणी! और किस देवता ने तेरी पूजा की है? ब्रह्म देवता ने तुझे पैदा किया और विष्णु देवता ने तुझे माना है । तेरी रसोई कौन देवता करता है और कौन देवता पानी भरता ? अग्नि देवता तेरी रसोई करता है और पवन देवता तेरा पानी भरता है। तू आदि शक्ति दुर्गा भवानी है ।

दूसरा गीत ज्वाला मुखी माता से सम्बन्धित है जिसमें गीतकार कहता है:- मां तेरी ज्योति जगती रहे । अकबर सम्राट तेरे द्वार पर नंगे पैर आया और सोने का छत्र मातेश्वरी श्री चरणो में चढ़ाया । हे मां! तेरा भवन किसने बनाया और कौन तुझे चौंरी झुला रहा है? पांच पांडवों ने तेरा भवन बनाया है और महारथी अर्जुन तुझे चंवर झुलाता है । हे मां! तेरी ज्योति निरंतर जलती रहे ।

कहीं कहीं चन्दरौली गान में धार्मिक गीत को छोड़कर प्रहसनात्मक गीत भी गाये जाते है । ऐसे गीतों से प्रहसनात्मक लोक नाट्य में सुवर्णे गन्ध योगः वाली बात हो जाने से वातावरण और भी विनोदात्मक बन जाता है । ऐसे ही एक गीत की पंक्तियां इस प्रकार हैं :-

दो नारांऽऽ---दो नारां वे लोको लसकीदियां तलवारां
बड्डी भली थी, बड्डी भली थी बे लोको
हलकिया झगड़ा पाया
दो नारांऽऽ-- दो नारां बे लोको लसकीदियां तलवारां

उक्त गीत का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है: .

घर में दो स्त्रियां या पत्निएं मानों असिधारा के समान लसकती हैं । इनमें बड़ी भली थी किन्तु छोटी स्त्री ने झगड़ा डाल दिया । दो स्त्रियां मानो तलवार के समान चमकतीं है ।

इस प्रकार के गीतों से चन्दरौली नाट्य इतना अधिक मार्मिक और रसोद्रेक पूर्ण बन जाता है कि दर्शक देखते हुये आत्म विभोर हो जाते हैं । 'यही इस लोक नाट्य की चरम सीमा है । यही चन्द्रावली लोक नाट्य की सफलता है । वस्तुतः प्रहसन लोक नाट्य के साथ-साथ यह गीति नाट्य भी है जिस में गीत के नृत्य एवम् अभिनय अभि-

नीत होता है ।

उपसंहार ईसा की प्रथम और तृतीय शताब्दी के मध्य में 'भरत आचार्य' ने संस्कृत नाट्य परम्परा के नाट्य शास्त्रकीरचना की । उस विकास क्रम के आधार पर प्रहसन के दो भेद किये गये :- 'शुद्ध' और 'संकीर्ण'।लोक नाट्य परम्परा में "भगत" लोक नाट्य संकीर्ण प्रहसन है जिसके पात्र, वेश्या, चेट, नपुंसक धूर्त बन्धकी होते हैं । इनका वेष और चेष्टाएं अपरिष्कृत होती है । इनका प्रधान विषय दम्भ, छल, ढोंग और आडम्बर का भाण्डा फोड़ना होता है । भगत और करियाला लोक नाट्य का आधार यही है । चन्दरोली भी इसी लोक नाट्य परम्परा से सम्बधित है किन्तु यह प्रहसना--त्मक गीति लोक नाट्य परम्परा के अन्तर्गत आता है जिस में "डंडू" विदूषक की भांति और चन्दरौली सखियों की तरह अभिनय करते हैं । अंत में महाकवि कालिदास की यह पक्तियां निष्कर्ष रूप में दी जाती हैं :-

"नाट्यभिन्न-रुचिर्जनस्य वहुधाप्येकं समाराधनम"

नाटक विभिन्न प्रकार की रुचि रखने वाले मनुष्यों के मनोरंजन का अद्वितीय साधन है ।

-x-

करियाला

- एम० आर० ठाकुर

हिमाचल प्रदेश के प्रमुख लोक-नाट्यो में करियाला का स्थान आज सर्वोपरि है । सिरमौर, शिमला और सोलन ज़िले इसके मुख्य क्षेत्र हैं । यों तो यह किसी भी समय का खेल है और वर्ष-भर कहीं-न-कहीं चला रहता है, परन्तु सर्दी के दिन इसके बहार के दिन हैं और करियाला का असल समय दीवाली से आरम्भ होता है । वर्ष-भर के प्रमुख भाग में खेतों और खलिहानों के कड़े परिश्रम से कृषक निवृत्त हो जाता है तो उसे मनोरंजन की लालसा रहती है और इस लालस की पूर्ति भगतिये और करियालची बड़ी सफलता से सम्पन्न करते हैं । तब ये लोग अपनी मण्डलिया गठित करके अपने साज़-सामान के साथ जनमानस के मनोरंजन के लिए घर से बाहर निकल कर गांव-गांव में फिरते हैं। उनके चिमटे खंजरी, ढोलक का मधुर संगीत उनके आगमन की सूचना देता है ।

करियाला में यद्यपि नौटंकी,स्वांग भगत और गुजरात के भवाई जैसे लोक-नाट्यों का रूपाकार, स्वांगाभिनय मिलता है, परन्तु मूल में यह पहाड़ी जनमानस का मौलिक मनोरंजक खेल है और इस धरती के सांस्कृतिक और सामाजिक लोक-जीवन की आन्तरिक झांकी का दिग्दर्शन कराता है । इस लोक-नाट्य को करियाला, करियाड़ा, कराड़ा,कराला, करयाला अनेक तरह से लिखा गया है और स्थान-भेद के कारण उच्चारण भी अनेक प्रकार से होता है । वैसे संस्कृत-हिन्दी के "ल" अक्षर को "ल़","ल़" को "ड़" और "ड़" को "अ" में बदलने की प्रवृत्ति पहाड़ी भाषा की मौलिक विशेषता है यथा-काला→काल़ा→काड़ा→काआ । अतः कुछ पत्रिकाओं में छपे इसके भिन्न रूप से हैरानी नहीं होनी चाहिए । करियाला लोक-नाट्य के निर्देशक को करियालटू, स्वांग करने वालों को स्वांगी या स्वांगची और कलाकारों को करियालची, करालची या करियालचू कहते हैं। "टा", "टू","ड़ा""ड़",चा", "चू" या "ची" पहाड़ी भाषा के अल्पार्थक या लघुत्वार्थक प्रत्यय हैं । कुछ क्षेत्रों में और विशेषतया सोलन क्षेत्र के आस-पास करियाला का स्थानीय रूप "धाजा" कहलाता है । इसे समाज के निम्न वर्ग के लोग प्रस्तुत करते हैं । समाज के

1. प्रस्तुत लेख लेखक की पुस्तक "हिमाचल के लोक-नाट्य और लोकानुरंजन से लिया गया है ।

अन्य लोग धाजा मण्डलियों को निमन्त्रित करके इसका अपने यहां आयोजन करवाते हैं। करियाला शब्द और करियाला लोक-नाट्य की व्युत्पत्ति और प्राचीनता के विषय शोध की अपेक्षा रखते हैं। कुछ विद्वानों ने करियाला शब्द की व्युत्पत्ति स्थानीय शब्दों करेल॥कुरेदना,खोजना॥, करयाल॥कचनार जाति का एक वृक्ष विशेष॥, कुरल ॥पक्षी विशेष॥, करौला या करोला॥उलटना,पलटना, सचेत करना॥ और संस्कृत "कृ" धातु से जोड़ने के प्रयत्न किए हैं और करेला या खरेला से इसका सम्बन्ध अधिक निकट सम्भव समझा है। कुछ अन्य विद्वान् करियाला को स्थानीय शब्द "करेल" से व्युत्पन्न हुआ समझते हैं । उनका कहना है, कि हमारे प्रदेश के पूर्वी ज़िलों में करियाला अत्यधिक प्रचलित रहा है । किसी देवी-देवता के मन्दिर अथवा मैड़ी में जाकर कोई दुखी ग्रामीण अपनी मनौत॥अपने मन की बात॥ रखता है । मनौत को पहाड़ी भाषा में 'करेल' भी कह देते हैं । जब वह करेल पूरी हो जाए, तो वह उस देवी-देवता के प्रति श्रद्धाभाव से गद्गद हो जाता है, वह उसकी पूजा करता है, पुजारी बन जाता है । देवी-देवता को श्रद्धा के पुष्प चढाता है।

इतना करने पर उस पुजारी का कुछ आत्म-संतोष तो हो जाता है, परन्तु वह सोचता है कि देवी-देवता तो तब प्रसन्न होंगे जब अपने सम्बन्धियों, अपनी बिरादरी भाई-चारे और अपने परिवार के सभी परिजनों को एकत्र करके देवता की 'करेल' के लिए कुछ नाच-नृत्य और कथावार्ता की जाए । इस भावना से "करियाला" का आरम्भ हुआ । इसके आकार और शैली की कुछ बातें निश्चित हो गईं, जैसे साधु-स्वांग, चन्द्रावली, नृत्य, कुछ समकालीन समस्याओं के नाट्य रूप । यदि ऐसा नाट्य देवी-देवता की करेल अर्थात् मनौत की प्रसन्नता में किया जाए तो 'करियाला' कहलाता है और यदि विवाह-शादी आदि अवसरों पर करे तो 'बांठड़ा' कहलाता है।[2]

करियाला या कराला का सम्बन्ध संस्कृत शब्द "कराल" से भी जोड़ा जा सकता है । "कराल" शब्द संस्कृत-साहित्य में अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है । भयानक, तलवार डरावना, बड़े-बड़े दांतों वाला इसके सामान्य अर्थ हैं। सुश्रुत मे कराल शब्द हरिण जाति के पशुओं के लिए प्रयोग में आया है । हरिण हिमाचल के अनेक क्षेत्रों मे लोक-नाट्य का प्रमुख विषय रहा है । कुल्लू का हरण, चम्बा का हरणेतर और किन्नौर का होरिंग-फो इस बात के प्रमाण हैं । मुण्डक आदि अनेक उपनिषदों में कराल शब्द असुरों, देवों, गन्धर्वों, किरातों, राक्षसों के लिए प्रयुक्त हुआ है । गन्धर्व और किरात संगीत और नाट्य-

1· भाषा एव सस्कृति विभाग द्वारा प्रकाशित "शोध पत्रावली" ॥भाग एक॥पृ0 44-56 पर श्री चन्द्रमणि वशिष्ठ का लेख "हिमाचल मे देहाती नाटक-सम्भावना और विकास"।

3· श्री हरि चन्द पराशरः भाव ज्योति, पृ0 86 ।

प्रिय जातियां थीं । सम्भव है उन जातियों का यह खेल रहा हो और चूंकि हिमाचल इनका मूल स्थान रहा है, अतः यह खेल परम्परा से आज तक पहुंचा हो । अग्नि की सात जीभों और नौ समिधाओं में से एक 'कराल' भी है ।

ये सभी अवधारणाएं करियाला लोक-नाट्य से मेल खाती हैं । चूंकि मखौटे करियाला के मुख्य उपकरण हैं और मखौटों द्वारा इस तरह के दृश्य प्रस्तुत करना करियाला का प्रमुख अंग है, अतः संस्कृत "कराल" से ही कराला वा करियाला की व्युत्पत्ति मानी जानी चाहिए । ऐसे खेलों के लिए कभी "क्रीड़ालय" स्थापित हुए और इसी से करियाला की उत्पत्ति हुई । कुछ विद्वान् करियाला को सत्तरहवीं शताब्दी से अधिक पुराना नहीं मानते[1]। परन्तु उक्त सन्दर्भों से करियाला की प्राचीन परम्परा को आंका जा सकता है । इसके लिए निश्चित रूप से अभी अध्ययन और शोध की आवश्यकता है । वैसे करियाला में आखाड़े के बीच धूनी की स्थापना और अवधूत अथवा विदूषक पात्रों की सत्ता इसका प्रारम्भ ग्याहरवीं शताब्दी की नाथ और सिद्ध परम्परा से जोड़ती है ।

लोक-नाट्य :

करियाला के लिए किसी मंच-विशेष की आवश्यकता नहीं है । यह प्रकृति के खुले प्रांगण का खेल है और यह प्रायः रात्रि के समय ही खेला जाता है । त्यौहारों मेलों, विशेष अनुष्ठानों या देवताओं के जागरण के समय करियाला सायंकाल से आरम्भ होकर, रात-भर प्रातः तक चलता है ।मंच के रूप में प्रयोग करने के लिए एक खुले स्थान को चुन लिया जाता है । उसके मध्य या एक कोने पर स्थान की उपलब्धि के अनुसार लगभग 8-10 मीटर लम्बे-चौड़े स्थान के चारों ओर एक मीटर भर लम्बे खम्बे या डंडे खड़े कर दिए जाते हैं और उनको रस्सी से बांध कर चौकोर वर्ग बना दिया जाता है । उसके साथ ही या कुछ दूरी पर दो-तीन चादरें तान दी जाती हैं अथवा छोटा तम्बू या कोई छोटा कमरा या घास का छप्पर अभिनयकर्ताओं की तैयारी के लिए बना रहता है । यहीं पर करियाला के कलाकार अपना हार-श्रृंगार करते हैं । इसे 'ग्रीन रूम' या मेक-अप का स्थान समझिए । ग्रीन-रूम यदि दूर हो तो रस्सियों से घिरे स्थान के चारों ओर दर्शक बैठ जाते हैं । यदि यह साथ ही बना हो तो दर्शक तीन ओर से खेल देख सकते हैं ।

रस्सियों से घिरा हुआ चौकोर स्थान ही मंच है । इसमें किसी रंग-बिरंगे पर्दे की आवश्यकता नहीं है । इस चौकार स्थान को 'खाड़ा' कहते है जो "अखाड़ा" खब्द का तद्भव रूप है । इसके मध्य में, चाहे कोई भी ऋतु हो, आँग जलाई जाती है । इसे स्थानीय भाषा मे खडा, धूनी या घियाना(स० अग्नि+स्थानः) कहते है । इस

आग को पवित्र माना जाता है । इस 'अलाव' की पवित्र रोशनी करियाला के पूर्ण समय जलती रहती है । साथ ही किनारे पर प्रकाश के लिए डंडों से तेल के दीये या मिट्टी के तेल से भरी बोतल में जलती हुई बत्तियां अथवा मशाल या आजकल पैट्रोमैक्स आदि लटका दिए जाते हैं । अलाव की स्थापना में पवित्रता की भावना करियाला का धार्मिक जागरण से सम्बध स्थापित करती है । यह करियाला के विशेष वातावरण को बनाए रखने में सहायक सिद होता है। रात-भर के लम्बे जागरण के लिए अलाव की आवश्यकता सर्व-मान्य है । यह प्रकाश का काम देता है और साथ ही इन पहाड़ों की सर्द रात्रियों के लिए आग का होना जरूरी भी है ।

करनाल, रणसिंहा, चिमटा, नगारा, दमामटू, शहनाई, बांसुरी, ढोलक, खंजरी करियालो के वाद्यन्त्र हैं । इनकी मधुर तान दर्शकों के लिए निमन्त्रण की घड़ी होती है । अखाड़े के एक किनारे पर बजन्तरी बैठ जाते हैं । वाद्यन्त्रों का संगीत दर्शकों का स्वागत करता है । करियाला का प्रारम्भ बधाई ताल के साथ होता है । बधाई ताल के बजते ही चन्द्ररौली अर्थात् चन्द्रावली अखाड़े में प्रवेश करती है । वह लक्ष्मी रूप में होती है । वह नारी है परन्तु वास्तव में पुरूष ही नारी वेश-भूषा में चन्द्रावली का अभिनय करता है । चन्द्रावली के पहाड़ी लोक-नाट्यों में विशेष स्थान के बारे मे "हरण" लोक-नाट्य के अन्तर्गत विवेचन किया गया है । चन्द्रावली मंच पर आते ही वाद्य-यन्त्रों को छूती है, अलाव की परिक्रमा करती है तथा वाद्यन्त्रों एव दर्शकों के ऊपर जलते धूप का पात्र घुमा कर कार्यक्रम का शुभारम्भ करती है । चन्द्रावली नटी है । वह बधाई ताल के बाद जंगताल, करियाला ताल में नृत्य करती है । ये तालें नृत्य के साथ-साथ धीरे-धीरे द्रुतगति पर पहुंचती हैं । कई बार चन्द्रावली के साथ एक अन्य चरित्र भी रहता है जिसे सिद, कान्ह या डांगरा-कान्ह कहा जाता है । कान्ह संभवतः कृष्ण-कन्हैया ही है । परन्तु वह केवल एक दृश्य में कृष्ण का अभिनय करता है, जब वह पांच-छः सखियों के बीच प्रस्तुत होता है । उसे डांगरा-कान्ह इसलिए कहा जाता है कि उसके हाथ में डांगरा अर्थात् स्थानीय कुल्हाडा होता है । खेल आरम्भ होने से पूर्व प्रायःयही मशालों या दीपों को जलाता है । इस सारी प्रक्रिया को "अखाड़ा-बांधना" कहते हैं । अखाडा बांधने से अभिप्राय इष्टदेव की पूजा करके करियाला के सफल आयोजन की मनोकामना से है । इसे मन्त्रोच्चारण द्वारा बन्दना द्वारा या परिक्रमा आदि द्वारा पूर्ण किया जाता है । इससे आयोजन में विघ्न नहीं पड़ता । दुष्ट नजरों का कुप्रभाव नहीं होता । ऐसी आस्था है । वैसे अखाडा बाधने का धिान हर मण्डली का अपना अपना होता है, परन्तु सामान्यतः कलाकार, निर्देशक और बजन्तरी अखाड़े के मध्य अलाव की तीन बार प्रदक्षिणा

1. श्री ओमचन्द हाण्डा "हिमाचल का लोक-नाट्य करियाड़ा" सोमसी त्रैमासिक पत्रिका, जनवरी, 1975 अंक, पृ0 25-32

करते हैं । मत्रोच्चारण के साथ अग्नि में अक्षत फेंका जाना जरूरी होता है ।

चन्द्रावली विभिन्न पहाड़ी धुनों में नृत्य करने के पश्चात् वापिस तथा कथित ग्रीन रूम में चली जाती है । तभी वातावरण सहम-सा जाता है । समय थम जाता है, सब शान्त हो जाता है । तभी दर्शकों के बीच में से या कहीं बाहर से भीड़ को चीरता हुआ अलख जगाता हुआ साधु वेश में एक व्यक्ति मंच की ओर लपकता है, और उसके साथ ही चारों दिशाओं से दो-तीन और साधु मंच की ओर लपकते हैं । सारे वातावरण में हलचल-सी मच जाती है । साधुओं के लिए कोई मार्ग नहीं । जहां से जी चाहा मंच पर पहुंचते हैं ।

संवाद और भाषा :

करियाला का कोई आलेख प्राप्य नहीं है । उसके संवाद लिखित नहीं हैं । कलाकारों को अपनी बात जबानी कहनी होती है । उनकी हर बात समय के अनुकूल होतीं है । वाक्‌पटुता करियाला की सफलता की प्रमुख कसौटी है । कलाकार जो भी विषय लेते हैं, उसकी पूर्ण जानकारी आवश्यक है और उस जानकारी को वह किस चतुराई से अभिव्यक्त करता है यही उसका कमाल है । बिना लिखित आलेख के केवल करियालटू के निर्देशन पर सारा संवाद सफलता से प्रस्तुत करना कोई साधारण कार्य नहीं है यह अत्यन्त साधना का विषय है । अभिनयकर्ता बात इस ढंग से करता है जिसका मन पर सीधा प्रभाव पड़े । इनके संवाद काव्यात्मक होते हैं । मूल रूप में करियाला पहाड़ी भाषा में ही प्रस्तुत होता है । परन्तु बीच-बीच में पंजाबी, हिन्दी और उर्दू भाषाओं के शब्द प्रयुक्त होते हैं। और यह जान-बूझ कर परिहास के उद्‌देश्य से किया जाता है । अतः इनकी भाषा खिचड़ी या सन्तों की सधुकड़ी भाषा के समान रहती है । संवाद छोटे और भाषा चुस्त होती है । यदि समय पर बात न बन पाए तो हाथों के इशारों,मुद्राओं और हाव-भाव के प्रदर्शन द्वारा दर्शकों के मन को उलझाए रखते हैं। इस तरह कलाकार संवाद के अभाव की नीरसता को अखरने नहीं देते । चूंकि स्वांग कलाकार का मुख्य उद्देश्य होता है, इसलिए ऐसे समय में शारीरक भंगिमाओं का ऐसा प्रदर्शन भले ही उनके लिए संकटपूर्ण हो, परन्तु दर्शकों के लिए यह घड़ी बड़ी मनोरंजक और विनोदपूर्ण होती है । चतुर करियालची शब्दों की लड़ियों को द्रुतगति से प्रस्तुत करता है ।

कलाकार अपने सवाद को पद्यात्मक रूप में प्रस्तुत करते हुए प्रायः लोक-धुनों को प्रयोग करते हैं । इससे श्रोताओं को श्रुति-माधुर्य का आनन्द रहता है । अपने संवाद मे वे रवानगी लाते हैं । वस्तुतः अभिनय की निपुणता और परिहासपटुता के कारण वह श्रोताओं के मन में सीधा प्रभाव छोड़ते है । आलेख लिखित न होने के कारण करियालचियों को एक बहुत बड़ा लाभ प्राप्त होता है । जहां कहीं उन्हें श्रोताओं में नीरसता या

अरूचि दिखाई देती है वह तुरन्त विषय बदल देते हैं । करियालची की योग्यता इसी में निहित है कि वह दर्शकों के ऊबने के क्षणों को तुरन्त समझ जाए और विषय बदल दे। उसे विषय बदलने की भी स्वतन्त्रता है और फिर कथानक के अनुरूप मनमाने संवाद प्रस्तुत करता है । अनेक बार चतुर करियालची दर्शकों के बीच में से किसी द्वारा किए कटाक्ष या बात को ऐसा रूप देता है कि उसी में समां बांध देता है । संवाद तुकान्त और पद्यबद्ध होने के कारण वे मनोविनोद के कारण बनते हैं। कलाकार स्थिति के अनुसार सहज में ही मनोरंजक संवाद गढ़ लेते हैं । वर्षों का व्यवसाय और अभ्यास उन्हें हर स्थिति का सामना करने के योग्य बना देता है ।

कथानक :

करियाला की कथावस्तु कुछ भी हो सकती है । इसमें चल-चित्र या साहित्यिक नाटकों की तरह एक ही कथानक नहीं चलता, वरन् अनेक कथानक रहते हैं । परन्तु इनमें पौराणिक, ऐतिहासिक कथानकों का अभाव रहता है । इस तरह के दृश्य करियाला में बहुत कम देखने में आए हैं । विशेषतः पुराणों या इतिहास से सम्बन्धित लम्बे कथानक करियाला में देखने में नहीं आते हैं । परन्तु इनका नितान्त अभाव हो, ऐसा भी सत्य नहीं है । पौराणिक और ऐतिहासिक घटनाओं की अपेक्षा सामाजिक तत्वों का करियाला में अधिक परिचय मिलता है । हास्य और व्यंग्य द्वारा मनोरंजन करना करियाला का जहां मुख्य उद्देश्य है वहां छोटी-छोटी झलकियों और संवादो द्वारा प्रस्तुत कथानकों में अध्यात्मवाद, दर्शन तथा योग का परिचय भी मिलता है । इस प्रकार लम्बे कथानक होने की बजाय छोटे-छोटे प्रसंगों द्वारा पौराणिक घटनाओं को वर्तमान सामाजिक आवश्यकताओं के अनुकूल ढालने के प्रयत्न होते हैं । परन्तु यह प्रचार मात्र भी नहीं कहा जा सकता । इनमें लोकपरक अनुभूतियों और मनोरंजक भावनाओं का स्वस्थ स्वरूप उपलब्ध होता है । वस्तुतः करियाला मे जीवन की यथार्थ झांकी देखने को मिलती है । जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में करियालची को जो अनुभव होता है उसे वह बडी चतुराई से प्रस्तुत करता है । और चूंकि करियालची उसी समाज का एक अंग है इसलिए समाज की समस्याओं और घटनाओं का श्रोताओं पर सीधा प्रभाव पड़ता है । साधु के रूप में स्वांग का कोई भी संवाद टूटा हुआ, असंगत या अर्थहीन नहीं होता । साहित्यिक नाटकों में पहले से ही तैयार किए आलेख में मस्तिक की कसरत हुई होती है। परन्तु करियाला में लिखित आलेख के अभाव में समय पर उभरा संवाद मन के अन्तस्थ से निकली भावना होती है जो श्रोताओं पर सीधा-तीखा प्रभाव करता है । करियाला में सर्वदा और सर्वथा साधु का स्वांग सर्वप्रथम प्रस्तुत होता है । इस प्रथम दृश्य में दो या तीन साधुओं के वार्तालाप में जहां कभी-कभी एक ओर फूहड़, भद्दी और क्षुद्र परन्तु चटपटी व्यंगोक्ति से ओत-प्रोत

मजाक रहता है, वहां दूसरी ओर इसमें दार्शनिकता का भावलोक भी प्रदर्शित होता है । हिमाचल कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी के लोक-नाट्य "लाटी शरजंग हौर हीना डण्डुव" का खेल ही संवाद से आरम्भ होता है--

पहला साधु	जय शिव शंकर कांटा लगे न कंकर ।
दूसरा साधु	अरे दरिद्री, खाने-पीने का ढंग कर ।
पहला साधु	बम-बम भोले, बम-बम भोले ।
दूसरा साधु	देख रहा मैं, लाट-लाट में उडन खटोले ।
तीसरा साधु	एक मछेरन सागर तट पर डाल रही था कांटा
पहला साधु	मुझ को लगा ज्ञान का चांटा
दूसरा साधु	चरपट हो तुम बड़े रसीले, एक आंख से भजते ईश्वर ।
तीसरा साधु	तन के खोटे मन के भोले, नाड़ी के तुम ढीले ।
पहला साधु	तेरे मन पर काई छाया, पहले इस को धो ले, बम भोले बम भोले ।
दूसरा साधु	सारी उमर गई मरघट में ,धूनी बन गई कोले, बम भोले बम भोले ।
तीसरा साधु	भांग-धंतुरे की यह माया
पहला साधु	जोगी इसमें क्यों भरमाया
दूसरा साधु	अन्त समय कछ हाथ न आया ।
तीसरा साधु	छूटे कटुम्ब-कबीले, बम भोले बम भोले ।

इन साधुओं में ज्ञानी-ध्यानी, सन्त-त्यागी, साधु-स्वादु, मुनि-तपस्वी, राधो-माधो सभी तरह के होते हैं । अनेक सम्प्रदायों के साधुओं का स्वांग एक साथ रहता है । ये ज्ञान-विज्ञान, धर्म-आश्रम, जन्तर-तन्त्र-मन्त्र,भांग-धतूरा दान-दक्षिणा सब तरह की बातें करते हैं । आजकल के लोकप्रिय विषय जैसा छूआछूत, दहेज-प्रथा, परिवार-नियोजन, उन्नत-कृषि, सुधरे औजार, जनसेवा सभी उनके स्वांग के विषय बनते हैं। करियालचियों की पैनी दृष्टि से कोई विषय छूटता नहीं । आज का ग्रामीण समाज वर्तमान परिस्थितियोंके प्रति कितना सजग, सतर्क और सावधान है, इसका अन्दाजा इन करियालचियों के अभिनय से स्पष्ट हो जाता है । बुद्धिमान और मूर्ख साधुओं का वार्तालाप जहां हास्य और व्यंग्य का अद्‌भुत स्वांग होता है, उसमें दार्शनिकता के गूढ़ दृष्टान्त भी देखने को मिलते हैं । जहां एक साधु पौराणिक उदरणों से ज्ञान,धर्म,अर्थ,काम, मोक्ष के दृष्टात प्रस्तुत करता है दूसरा साधु उस द्वारा प्रतिपादित अच्छे-बुरे, ऊंच-नीच, ज्ञान धर्म के

भेद-भाव को उल्टी-सीधी दलीलों या कटाक्ष द्वारा चौपट कर देता है । इस प्रकार एक ही साथ दो तीर चलते हैं । मूर्ख साधु का छिछला स्वभाव,क्षुद्र अभिनय दर्शकों के लिए मुक्त-हास्य, मनमोहक व्यंग्य का केन्द्र बनता है । दूसरी ओर बुद्धिमान साधु के दृष्टान्त उच्च नैतिकता के सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं। मूर्ख साधु का अभिनय कई बार विदूषक करता है । इसे "बौरा", "डण्डु","मसखरा" भी कहते हैं । करियाला की अधिकांश सफलता इस 'बौरा' पर निर्भर रहती है । बुद्धिमान् साधु प्रायः उसे बच्चा या बेटा कह कर पुकारता है :-

विदूषक	जटाधारी जी प्रणाम ।
पहला साधु	जीते रहो बेटा ।
विदूषक	कुछ ज्ञान-ध्यान, जप-तप भी है आपको ।
पहला साधु	हां, हां, बेटा, हम बड़े ज्ञानी हैं ।
विदूषक	कोई प्रश्न पूछूं !
पहला साधु	पूछो बेटा, शौक से पूछो ।
विदूषक	आर बी लंका, पार बी लंका, बिचे धुआंधारी । राम लखन जेबे लंका गए थे, तो कहां थे तपाधारी।
दूसरा साधु	आर भी लंका, पार भी लंका, बिचे धुआंधारी । राम लखन जब लंका गए थे,यह थे तिना साथी बगारी।
विदूषक	नहीं, नहीं तपाधारी, आप तो मजाक कर रहे हैं । कोई और प्रश्न पूछूं?
दूसरा साधु	पूछो बच्चा, पूछो ।
विदूषक	माता थी गर्भ में पिता थे कंवारे । तब कहां थे जन्म तुम्हारे?
दूसरा साधु	माता थी गर्भ में पिता थे कंवारे, था यह उस वक्त घर में तुम्हारे ।
विदूषकः	ना, साधो ना । सही-सही बताइए।
पहला साधु	तो सुनो-- माता थी गर्भ मे पिता थे कंवारे। पिता के मस्तक पर जन्म थे हमारे ।
विदूषक	धन्य हो महाराज, धन्य हो स्वामी ।
पहला साधु	और भी सुनो-- आर भी लंका, पार भी लंका, बिचे धुआं धारी । राम-लखन जहां भी गए, हम थे उनके पुजारी ।

विदूषक	धन्य हो महाराज, धन्य हो । एक और प्रश्न पूछूं?
पहला साधु	पूछो ।
विदूषक	एक क्या होता?
साधु	एक औतरा होता है ﴾जिसका कोई वारिस और आगा-पीछा न हो﴿
विदूषक	ना साधो ना, मजाक नहीं ।
दूसरा साधु	एक इकारा, दो द्वार,तीन तितर । चार चोर, पंज प्यारे, छः छितर ।
विदूषक	नहीं साधो नहीं । सच-सच बताओ ।
पहला साधु	तो लो सुनो-- एक ओंकार, दो चांद-सूर्य, तीन त्रिलोक,चार दिशाएं, पांच पाण्डव,छःकुन्ता माई,सात दीप,आठ काठ नौ ग्रह ।
विदूषक	दस दशांग, सोलहवां छुटा। दरवाजे पर फोड़ा ठुठा। सतारहवें दिन दसिया गुठा ।

ग्रामीण समाज के लिए स्वांग का अपना ही रूप है,अलग ही उद्देश्य है। इसे उसं समाज में रहने वाला भली प्रकार जानता है। करियाला का आरम्भ हमेशा साधु के स्वांग से हो, इसका भी एक प्रमुख कारण है । वह यह कि साधु की वाणी में भगवान बसते हैं ।वह नारायण-प्राप्ति का रास्ता बताता है--

माधो स्याला, शावणो बरखा, तौंदी जेठौ,
साधु रे भेखा सौदा नारायणो मेठौ ।

﴾माघ में सर्दी,श्रावण में वर्षा, ज्येष्ठ में गर्मी होती है । साधु के वेश में नारायण रहता है ﴿

गम्भीर व्यंग्य और मुक्त हास्य :

इस प्रकार करियाला में अनेक प्रहसन प्रस्तुत किए जाते हैं । साधारण लाड़ा-लाड़ी, चूर्ण वाले, जोगी-जोगिन , पति-पत्नी, नट्ट-नट्टणी के स्वांग से लेकर समाज की बड़ी-बड़ी बुराइयों को इन स्वांगों में प्रस्तुत किया जाता है । समाज की समस्याओं को प्रस्तुत करते हुए उनका समाधान भी इन्हीं करियाला एकांकियों में निहित रहता है। "साहब और मेम" के प्रहसन में भारतीय समाज की अंग्रेजियत पर कड़ा कटाक्ष है । "पिलपिली साहब" में नौकरशाही पर तीखा प्रहार है। "पति-पत्नी" के झगड़े में पारिवारिक

अनेक समस्याओं का समाधान परिलक्षित होता है ।

यह स्वांग न केवल ग्राम की साधारण जनता को स्वस्थ मनोरंजन उपलब्ध करा -ते हैं जो कलामय वातावरण तथा विनोद के उत्तम साधनों से वंचित हैं, वरन् इन द्वारा सीधे-सीधे शब्दों में सरकार, समाज, संस्था तथा संगठनों पर कड़े कटाक्ष किए जाते हैं। चूर्ण वाल का स्वांग प्रस्तुत करते हुए स्थिति देखिएः-

चूरन अमल बेद का भारी, जिसको खाते कृष्ण मुरारी ।
मेरा पाचक है पचलोना, जिसको खाते श्याम सलोना ।
चूरन साहब लोक जो खाता, सारा का सारा हजम हो जाता ।
चूरन पुलिस वाले खाते, सब कानून हजम कर जाते ।
चूरन हाकिम सब जो खाते, सब पर दूना टैक्स लगाते[1]।

स्वांगियों के रूप में करियालचियों का परिधान ही उसे हंसी का पात्र बना देता है। स्वांगी मखौटों का जरूरी ही प्रयोग करते हैं। यह मखौटे लकड़ी या मिट्टी के बने होते हैं । कहीं-कहीं साधारण तूंबा के मखौटे भी प्रचलित हैं । जटाधारी साधु व्यूहल वृक्ष या भांग के रेशे "शेल" (या सेल) से जटाएं बनाते हैं। भेड़ो और बकरियों के बालों की भी सुन्दर जटाएं तैयार की जाती हैं । मेकअप के लिए चावल के आटे या चूने को अथवा यह उपलब्ध न हो तो चूल्हे की भस्म को ही प्रयोग में लाया जाता है । स्वांग प्रदर्शन करने के लिए जो वस्तु हाथ लगे उसका ही उपयोग कर लिया जाता है

करियाला में व्यंग्य की स्वस्थ झलक मिलती है । कटाक्ष तीखे होते हुए भी गम्भीर रहते हैं । परन्तु करियालची जब व्यंग्य से हास्य की ओर अग्रसर होते हैं तो गम्भी -रता को प्रायः तिलांजली दी जाती है । जहां व्यंग्य का उद्देश्य सुधारात्मक है तथा समाज की बुराई को व्यंग्यात्मक रूप से प्रदर्शित करते हुए समाधान भी जुटाया जाता है, वहां हास्य केवल मनोरंजन और विनोद का साधन होता है और वातावरण को स्थिर और सरस बनाने और कायम रखने के लिए अश्लील शब्दों का प्रयोग भी किया जाता है । यह अश्लीलता शब्दों के हेर-फेर, संवाद के परिवर्तन और शारीरिक भंगिमाओं द्वारा सभी तरह से प्रदर्शित होती है । वर्तमान परिस्थितियों में यह अश्लीलता करियाला के लिए बड़ी घातक सिद्ध हो रही है ।

संगीत-पक्षः

एकांकी तथा प्रहसनों के बीच में जब स्वांग करने वाले कलाकारों को अगले दृश्य की तैयारी के लिए समय की अपेक्षा होती है तो अन्तराल में लोक-गीतों और लोक-नृत्यों का आयोजन होता है । ऐसे समय में कुशल नर्तक और गायक नृत्य और गीतों

1. श्री रोशन लाल गुप्ता--हिम-प्रस्थ जुलाइ, 1978, पृ0 24।

द्वारा करियाला की सरसता को चार चांद लगा देते हैं। कुजू-चंचलो, गंगी, सुन्दर, मोल्क लामण, मोहणा, झूरी, सूरमा, मूशू आदि लोक-गीत और पहाड़ी भजन मधुर समां बांधते है। इन लोक-गीतों को नृत्य के साथ प्रदर्शित किया जाता है इस समय नाटी के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं । गिद्दा, लुड्डी, गीह साका रासा, रथोवला आदि करियाला के मनोरंजक नृत्य हैं । अनेक बार लम्बी गाथाओं को भी गीत और नृत्यों के साथ प्रस्तुत किया जाता है ।

कुशल वादक लोक-धुनों तथा जंग, कहरवा, दादरा आदि लोकप्रिय तालों पर अनेक नृत्यों का आयोजन कराते हैं। ढोल,नगारा,रणसिंहा, चिमटा, बांसुरी, करनाल, खंजरी और शहनाई आदि वाद्यन्त्र बैठे हुए दर्शकों और श्रोताओं के कदमों को भी नाचने के लिए प्रेरित करते हैं । अनेक स्थानों पर ऐसे समय में करियालचियों के साथ-साथ दर्शकों में से भी अनेक शामिल होकर माला-नृत्य का सुन्दर वातवरण प्रस्तुत करते हैं । यह नृत्य घण्टों तक अविरल चलता रहता है। कभी मन्द और कभी तेज गति में नृत्य अनेक गीतों के साथ लगातार चलता रहता है । यद्यपि इन वाद्य-यन्त्रों को सभी तरह के लोग बजाते है, परन्तु "हेसी" और "तुरी" लोग इस क्षेत्र में अधिक निपुण वादक माने जाते हैं । कुल्लू क्षेत्र की शहनाई सर्वाधिक प्रसिद्ध है । रणसिंहा और करनाल दूर-दूर तक करियाला का निमन्त्रण देते हैं। रात के शान्त वातावरण में इनकी ध्वनि पहाड़ों की चोटियों को दहला देती हैं । शहरी सभ्यता के कारण अब करियाला में हारमोनियम और तबले का भी प्रयोग होने लगा है, और फिल्मों के भद्दे गानों का भी प्रयोग होने लगा है । अश्लीलता के उदाहरण विभिन्न गीतों मे भी देखे गए हैं ।

संरक्षण :

इस रोचक,मनोरम और उल्लासपूर्ण खेल का भविष्य आज अन्धकार में है। इसके कारण ढूंढना कठिन नहीं है । विज्ञान और उद्योग के चमत्कारपूर्ण विकास के युग में हर वस्तु को भौतिकवादी दृष्टिकोण से आंका जाता है। जो परम्पराएं इस कसौटी पर खरी नहीं उतरती उनका तिरस्कार होने लगता है। उपेक्षित होने पर उनका ह्रास स्वाभविक है । हमारी सांस्कृतिक धरोहर औद्योगिक और यान्त्रिक उपलब्धियों द्वारा दुष्प्रभावित हो रही है । हमारे रंगमच को चलचित्र ने बुरी तरह से पछाड़ दिया है । पारम्परिक वाद्य-यन्त्रों को ग्रोमाफोन ने प्रतिस्थापित कर दिया है । हमारे बच्चे दादी-मां से कथाएं सुनने की बजाय आकाशवाणी के नाटकों और कहानियों का मजा लेते हैं । ऐसी स्थिति में हम जीवन के उच्च उद्देश्यों को भूल गए हैं। जीवन के हर कार्य को हम धन के मानदण्ड से आंकते हैं। कला का उद्देश्य जब न सत्यम् है, न शिवम् न सुन्दरम् ।धन-कुंबेरम् उसका एक मात्र प्रयोजन रह गया है । अतः यदि कला के वास्तविक उद्देस्य ने मनोरं-

जनात्मक "विनोद" से चल कर आत्मिक "आमोद" से होते हुए आध्यात्मिक "आनन्द" तक पहुंचना है तो आज हमें कला को उसके मूल उच्च-स्थान पर आरूढ़ करना होगा।

हमारी प्राचीन अध्यात्मवादी संस्कृति की अनेक उत्कृष्ट परम्पराएं आज भौतिकवाद के दृष्टिकोण का शिकार बन गई हैं ।

कुछ 'करियाला' के अपने अवगुण भी हैं । इनमें अश्लीलता के अभिनय और संवाद प्रमुख हैं । अश्लीलता के कारण करियाला आरम्भ से ही स्त्रियों के लिए आकर्षण केन्द्र नहीं रहा है। हाल ही में शहरी प्रभाव के कारण इसमें अनेक छिछलापन और विकार भी आए हैं । गावों की शहनाई, ढोलक, खंजरी जैसे मनमोहक वाद्ययन्त्रों को छोड़ हारमोनियम और तबले के प्रयोग ने करियाला की मूल आत्मा का गला घोंट दिया है, और फिर जिन लोक-गीतों के लिए हिमाचल प्रसिद्ध है उनके स्थान पर फिल्मी गानों और धुनों की भोंडी,भद्दी और घटिया अनुकृतियां करियाला की गरिमा को कैसे सुरक्षित रख सकती हैं ।

ऐसी स्थिति में यह आवश्यकता जोर पकड़ रही है कि ऐसे उपाय किए जाएं जिनसें लोक-नाट्य के परम्परागत गौरव और महत्व को ह्रसित और नष्ट होने से बचाया जाए । इसी दृष्टि से लोक सम्पर्क विभाग, हिमाचल प्रदेश ने 1959 में 26 से 28 मार्च तक धामी के स्थान पर प्रथम 'हिमाचल नाट्य सेमिनार' आयोजित किया था । इस तीन दिवसीय सेमिनार में प्रदेश भर की अनेक लोक-नाट्य मण्डलियों के अभिनेताओं, निर्देशकों और लेखकों ने भाग लिया । सम्मेलन में लोकल लीडर्ज क्लब धामी द्वारा प्रदर्शित एक करियाला का व्यावहारिक रूप देखने के बाद विचार-विमर्शोंपरान्त निम्नलिखित पांच सुधारात्मक नियम प्रस्ताविक किए गए--

1. करियाले की आत्मा "हास्य" को सुरक्षित रखा जाए। इसमें केवल अश्लीलता दूर की जाए । इसके लिए --

(क) नाटकों की तरह हर स्वांग को लिखित रूप दिया जाए और उसे स्थानीय बोलियों में रूपान्तरित किया जाये ।

(ख) स्वांग का कथानक सामाजिक, ऐतिहासिक,धार्मिक कुछ भी हो सकता है किन्तु उसमे 60 प्रतिशत हास्य का होना आवश्यक है । हां, कथानक का चुनाव प्रादेशिक रीति रिवाज, संस्कृति आदि के अनुकूल हो ।

(ग) करियाला का उद्देश्य मनोरंजन के साथ-साथ समाजोन्नति भी होना चाहिए।

2. करियाले को अभिनयात्मक नियन्त्रण में लाने के लिए निर्देशक का होना आवश्यक है जो समय की उपयोगिता, रोचकता, मंचीय सुविधा, स्वांग का क्रम,वेश-भूषा, परिवर्तन समय, पात्रचयन आदि का ध्यान रखेगा ।

3. करियाला के लिए "चतुस्"(भारत नाट्य शास्त्र के अनुसर) रंगमच होना चाहिए।

किन्तु यह तीन ओर से खुला हो। रंगमच के पिछले भाग को एक बड़े पर्दे के साथ जुदा करके श्रृंगार-गृह के रूप में प्रयुक्त किया जाए । मंच के अगले तीन भागों का उपयोग अभिनय आदि के लिए और पिछले चतुर्थ भाग का वाद्यकों के लिए होगा ।

4. साज़ और साज़िन्दे करियाले के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक मंच पर ही बैठेगे। साज़ केवल पांच होंगे--रणसिंहा, करनाल, ढोल,नगारा,नफीरी । नाटी और गीतों में वंशी और ढोल का प्रयोग होगा । हारमोनियम पूर्णतया वर्जित होगा ।

5. करियाले के अन्तर्गत प्रस्तुत दो स्वांगों के मध्य लोक- नृत्य और लोक-गीतों को प्रस्तुत किया जाए जिससे पात्रें को वेश-भूषा परिवर्तन का समय मिले ।

सम्मेलन में प्रस्तावित सुझाव लोक-नाट्यों को सजीव रखने के प्रति सराहनीय उपाय अवश्य हैं, परन्तु इस दिशा में कुछ तथ्य अवश्य विचारणीय हैं । जहां स्वांगों को लिखित रूप देने का एक लाभ जरूर होगा कि इससे स्वांग की भाषा नियन्त्रित हो जाएगी और अनावश्यक अंश जो वर्तमान परिस्थितियों में श्रोताओं को उबाने वाला होता है , समाप्त हो जाएंगे, वहां यह डर है कि इससे कलाकारों की स्वतन्त्रता और मौलिकता को सख़्त धक्का लगेगा। लिखित रूप न होने के कारण कलाकारों को अपनी प्रतिभा दिखाने का अधिक अवसर मिलता है जिससे वे मंच पर चमत्कार दिखाते हैं । ऐसी मौलिकता के लिए कलाकारों को स्थान रहना चाहिए । अधिक अच्छा होगा यदि पुराने स्वांगों के टेप तैयार किए जाएं क्योंकि पुराने स्वांग नई परिस्थितियों में प्रायः समाप्त हो रहे हैं। करियाला निश्चित रूप से ग्रामीण जनता का मनोरंजन है, इसमें स्थानीय भाषा और परिस्थितियां सुरक्षित रहनी चाहिएं । लेखक लिखित रूप देते हुए साहित्यिक नाटकों और शहरी प्रभाव में कहीं अधिक न बह जाएं, इस बात का भी भय है ।

करियाला आदि लोक-नाट्यों में अश्लीलता के अंश वर्तमान परिस्थितियों के बिल्कुल अनुकूल नहीं है । हास्य की होड़ में ऐसी अश्लीलता जारी रहे, यह क्षम्य नहीं होगा । नये कथानकों में प्रादेशिक हारों, गाथाओं और लोक-कथाओं को पूरा स्थान मिलना चाहिए। इस सम्बन्ध में हिमाचल कला,संस्कृति और भाषा अकादमी द्वारा स्थानीय लोक-कथाओं पर आधारित लोक-नाट्य 'लाटी शरजंग' और 'हीना डण्डुव,पवाडा झांखू अज़वा सूनी-भूंकू' और 'रानी सूई' का बलिदान सफल प्रयास है। करियालचियों और लोकनाट्य -कारों को प्रोत्साहन दिया जाना आवश्यक है। साज़ों में शहनाई को छोड़ा नहीं जा सकता शहनाई पहाड़ी संगीत की जान है। उसके बिना लोक-धुनें अपर्याप्त रहेंगी । लोक-नाट्यों में पहाड़ी नृत्यों और गीतों को पूर्ण स्थान मिलना जरूरी है ।

-0-

हरणात्र, झांकी और बांढा

-अमर सिंह रणपतिया

चम्बा की ऊपरी रावी घाटी में चम्बा की तहसील भरमौर और उससे संलग्न क्षेत्र सम्मिलत हैं । जहां हरणात्र ﴾हरण﴿, झांकी और बांढा लोक-नाट्यों का प्रचलन है जिन का क्रमशः विवरण इस लेख में दिया जा रहा है:-

हरणात्र

पहाड़ों में जब सर्दी पड़ती है तो वहां बसे जन-मानस के ठण्ड से रोंगटे खड़े हो जाते हैं । वह प्रकृति के क्रूर प्रहारों से बचने के लिये घर के एक कोने में मानों सिकुड़ कर रह जाता है । बर्फ की पड़ती श्वेत बौछार पल भर में ही धरती को हिमाच्छादित कर देती है । उसका माल-मवेशी अन्दर ही अन्दर न जाने कितने दिन धूप को देखे बिना पड़ा रहता है । उसे अपने पशुओं को घास-पानी किसी न किसी तरह पूरा करना पड़ता है । बाल-बच्चों के भरण-पोषण का प्रबन्ध करना पड़ता है। ऐसे मौसम में भी उसे परिश्रम करके घर की सारी सामग्री जुटानी पड़ती है । ऐसे में वह सर्दी को कोसता है ओर आने वाली खुली गर्म ऋतु की कामना करता है।

आखिर प्रतीक्षा करने के उपरान्त फाल्गुन मास आ ही जाता है । सर्दी का प्रकोप कम हो जाता है और होली का चिर प्रतीक्षित त्यौहार आ ही जाता है । बच्चा-बूढा, स्त्री-पुरूष, अब होली - होली होली पुकार उठता है। अब वह'बसन्त' ﴾गर्मी की ऋतु﴿ का खुले दिल से स्वागत करता है और "हिउंद" ﴾सर्दी का मौसम﴿ को तिरस्कारता है । यहां तक कि निर्जीव प्रकृति को गाली-गलोच देने से भी संकोच नहीं करता और यहां तक कि आवेश में वह यह भी कह देता है "बसद आ ! हिउंद गो:!हिउंद सत फटा जुट्टेरी खांदा गो- गर्मी आई, सर्दी गई , जूते की मार खाती गई"-! इतना आक्रोश । आखिर क्या करे बेचारा। इतनी भयंकर सर्दी ने उसके दिमाग को भी कुंठित कर दिया है । सर्दी के क्रूर प्रहारों से वह तंग आ गया है । यह दशा होती है-इन ऊंचे और ठण्डे पहाड़ों में जहां की सर्दी उनके लिये होलिका बन कर आती है जिस का दहन वे मानों होली वाले दिन करते हैं और उसे अपशब्द कहते नहीं झिझकते । दिन के डूबने के बाद संध्या को थोड़ा अंधेरा होने पर वे अपने अपने घर के प्रांगण में होली जलाते हैं । उस समय सभी पहाड़ियों पर बसे घर होली की प्रज्जवलित लपटों से प्रकाशित हो उठते हैं । सारी घाटी आग की लपटों से आकाश में फैले नक्षत्रों की तरह जगमगा उठती है और साथ ही प्रति ध्वनित होती है घाटी

"हो ! हो ! की ध्वनि से और 'हिऊंद गो' । 'बसद आ' ····· इत्यादि उच्च स्वरो से ।

उसी समय ऊपरी रावी-घाटी में बसे भरमौर के संलग्न क्षेत्र-"छतराढी, पियूहर, बस्सु, लिल्ह और साल-घाटी के साहो और हुल्ह क्षेत्र- इस शुभ अवसर पर हरणात्र-नाट्य का आयोजन करता है जिसका पूर्ण विवरण यूं दिया जाता है :-

स्वाग तैयार करनाः स्वांग तैयार करने की प्रक्रिया को "हरण बन्हणा" की संज्ञा दी जाती है । यह व्यवस्था किसी स्थानीय देवालय में की जाती है। अलग-2 उपक्षेत्रों{गांव समूहों} में अपनी अपनी अलग-2 हरणात्र आयोजित की जाती है । हरणात्र-नाट्य के मुख्य स्वांग, खप्पर, चन्दौली गद्दी{विदूषक-शैल}, गद्दण,साधु, साहब और हरण {हिरण} हैं । अन्य स्वांग भी इच्छा के अनुसार तैयार किये जा सकते हैं । प्रत्येक स्वांग का परिचय, वेशभूषा और कार्य के अनुसार इस प्रकार है :-

खप्पर :- खप्पर पात्र को ऊनी चोला पहनाया जाता है । यह यदि टूटा- फूटा हो तो और भी अच्छा लगता है । उस ऊनी चोले को पहनने के बाद काले डोरे से भद्दे ढंग से लपेटा जाता है । पांव में वही टूटे- फूटे जूते और साधारण सा सादा पायजामा और सिर पर सांफ़ा या टोपी, पहनने के बाद मुंह पर मुखौटा पहना दिया जाता है । मुखौटे को स्थानीय भाषा में "मुहारा" कहा जाता है जो प्रायः लकड़ी के बने हुए होते हैं । उन्हें इस दिन फिर 'मकोल' या चूने से पोत दिया जाता है । मुखौटे के साथ दाढ़ी और मूंछ लगी हुई होती है । सिर पर जंगली लम्बी डंडी वाले सफेद फूल की कलगी पहनाई जाती है । हाथ में एक डंडा दे दिया जाता है जिसे वह दोनों हाथों में पकड़ कर इधर-उधर घुमा कर नृत्य करता जाता है और नाचते समय हो--हो--हो- की अजीब से स्वर में ध्वनि करता जाता है। वह नाचते समय भिन्न भिन्न भाव-भंगिमाएं दर्शाता है । खप्पर-पात्रों की गिनती दो, तीन, चार या इससे भी अधिक हो सकती है । यह सब जलूस के आकार और प्रकार पर निर्भर करती है ।

चन्दरौली कुछ पुरूषों या युवकों को स्त्री की वेश-भूषा में तैयार किया जाता है। इन्हें चन्द्रौली कहते हैं । चन्द्रौली की संख्या उतनी ही होती है जितनी कि खप्पर की। चन्द्रौली को लम्बा 'घघरा' पहनाया जाता है उस पर कमर में काला ऊनी डोरा बांधा जाता है । सिर पर दुपट्टा,टांगों में सलवार तथा यथा सम्भव आभूषण भी पहनाए जाते हैं ताकि वे आकर्षक लग सकें । चन्द्रौली खप्पर के साथ बराबर नृत्य करती है ।

गद्दी हरणात्र का अन्य पात्र गद्दी है । यह विदूषक की भूमिका निभाता है । यह ऊनी चोला, उसपर काला डोरा कमर में बाधता है । टांगों में पायजामा और सिर पर साफा या नोकदार गादी टोपी पहन कर रखता है । बगल में डोरे के साथ दरान्त एक तम्बाकू का थैलु, आग जलाने के लिए लोहे का "रूणाक" जिससे वह चक-मक पत्थर पर रगड़ने से आग पैदा करता है । हाथ में लकड़ी की बड़ी सी त्रिशूल ले रखता है । मुंह में बनावटी मूंछ और दाढ़ी लटकाए रखता है । यह समय-समय पर अपने श्लेष अलंकार युक्त शब्दों से दर्शकों को हंसाता है और मनोरंजक कथोपकथन से अपनी हाजिर जवाबी और वाक्-पटुता का परिचय देता है । सम्वाद कोई निश्चित नहीं होते । इस का काम केवल श्लेषयुक्त शब्दों से सब का मनोरंजन करना होता है । उसका सहायक पात्र गद्दण है जिसके माध्यम से मनोरंजन की कड़ी खुलती है जिससे सभी दर्शक और अन्य पात्र भी सवाल-जवाब में भाग लेते हैं जिससे सारा वाता-वरण हंसी के फव्वारों से गूंज उठता है और हंसी के फव्वारे फूटते हैं ।

गद्दण एक अन्य पात्र गद्दण होता है जिसे गद्दी की पत्नी मान लिया जाता है । किसी युवक को चोली, डोरा, दुपट्टा और सलवार पहना कर यह पात्र तैयार किया जाता है।

हिरण :- हरणात्र का हरण पात्र भी महत्वपूर्ण माना जाता है । इस पात्र को हिरण के सींग लगाए जाते हैं । इसे भी टूटे-फूटे कपड़े पहनाये जाते हैं । सारे शरीर को ऊनी डोरे से वांधा जाता है ताकि वह हिरण की तरह ही लगे । कभी-कभी लोग हिरण की सवारी भी करते हैं । यह पात्र प्रायः निम्न वर्ग से लिया जाता है ।

साहब एक और पात्र साहब का तैयार किया जाता है । यह पैंट,कोट और हैट पहने होता है । मुंह को पाउन्डर या आटे से पोतते हैं ताकि वह वास्तव में अंग्रेज ही लगे ।

साधु साधु भी हरणात्र का मुख्य पात्र होता है । इसे साधु की वेशभूषा में तैयार किया जाता है ।

अन्य कार्यकर्ता वाद्य-यंत्री ढोली और शहनाई होते है जो पेशे से ही निम्न वर्ग के होते हैं इन्हें आम भाषा में "बाजदार" कहते हैं ।

यह सारी व्यवस्था किसी देव-दवाले में की जाती है । सारा आयोजन होते ही हरणात्र का जलूस गांव-2, घर -2 घूमने के लिये प्रस्थान करता है। जलूस के आगे वाद्यंत्री, उनके पीछे स्वांग और फिर दर्शक और जलूस में अन्य व्यक्ति चलते

है । सारा वातावरण हो ! हो ! हो! और विभिन्न प्रकार के जयकारे से प्रति-ध्वनित होता है । ढोल-शहनाई की ध्वनि और जयकारे से सारी घाटी गूंज उठती है । साथ साथ पहाड़ी गाने भी गाते जाते हैं । एक के बाद दूसरा प्रचलित पहाड़ी गाना दोहराया जाता है । प्रत्येक घर में पहुचते ही निम्न लिखित गाने की पंक्तियां बार-बार दोहराई जाती हैं ।

हरण आया हरणोटा, राजे रामेरी प्रौळी
हरणारे सिंगडु, सुहाणो, जिहां मोती रे दाणे
डक बजदे डकडोरे राजे रामेरी प्रौली,
हरण आया हरनोटा, मंगदा बकरोटा
तुरत करे मंजहाणिए, असा दूरां जो जाणां ।
हरन आया हरनोटा राजे रामेरी प्रौळी ।

अब हर घर के प्रांगण में नृत्य किया जाता है तथा मनोरंजन के लिये कई प्रकार से हास- परिहास किया जाता है । इस समय प्रायः श्लेषमय भाषा का प्रयोग किया जाता है तथा थोड़ी बहुत अश्लीलता का पुट भी रहता है । ऐसे समय इस प्रकार के अभिनय को भी बुरा नहीं माना जाता ।

अन्त में उन को "अन्न" दिया जाता है इस समय दिये गये अन्न को "बरू" की संज्ञा दी जाती है । एक बड़े टोकरे में "बरू" डाला जाता है । दो छोटी टोकरियों में थोड़ा-2 अन्न डाला जाता है इसे "कुठेई "कहते हैं । कुठेई" वाजादार को दी जाती है । अन्य "कुठेई" भार उठाने वाले व्यक्ति को दी जाती है । उन्हें कुछ पैसे भी दिये जाते हैं । मेजवान घर में यदि उस वर्ष विवाह हुआ हो, पहला पुत्र जन्मा हो या किसी की नई नौकरी लगी हो तो उस से अधिक पैसे लेने की फरमाइश की जाती है ।

इस सारे अन्न और धन को एक दिन सहभोज में बांट कर खाया जाता है । इस सहभोज को "फगोल़" कह कर पुकारा जाता है । "फगोल़" के लिये सभी पात्रों और गाव-वासियों को निमंत्रित किया जाता है । "फगोल़" वाले दिन. फिर उसी प्रकार का नृत्य करने की प्रथा है ।

हरण वाले दिन सारी रात घर-2 जा कर खेल-तमाशा किया जाता है और "बरू" और पैसे मांगे जाते हैं । यदि उस रात कहीं अन्य हरणात्र जलूस मिल जाये तो उन में संघर्ष की आशंका है । यदि लड़ाई झगड़ा हो गया तो जिस हरणात्र के हरण पात्र के सींग छीन लिये जायें तो वे आपने आप को पराजित समझते

है । ऐसे अवसर पर सिर फटने का भी डर रहता है लेकिन ऐसी स्थिति को आने ही नहीं दिया जाता ।

झांकी :- इस क्षेत्र का दूसरा लोक-नाट्य "झांकी" है । वास्तव में हरणात्र और झांकी के पात्रो में कोई भिन्नता नहीं है । अन्तर केवल इतना है कि जहां "हरणात्र" केवल (एक दिन के लिये) होली वाली रात्रि के लिये ही आयोजित की जाती है वहां "झांकी" होली वाले दिन से आगामी आठ दिन तक के लिये आयोजित होती है । इस लिये यह स्वाभाविक ही है कि झांकी का कार्य क्षेत्र काफी बड़ा होता है। "हरणात्र" लोक नाट्य के पात्र कठिनता से आठ-दस गांव में खेल तमाशा कर सकते हैं वहां झांकी के पात्र बहुत बड़े क्षेत्र की यात्रा कर लेते हैं और अभिनय करते हैं । झांकी का आयोजन प्रायः निम्न वर्ग के लोग ही करते, हैं अतः एकत्रित अन्न और धन को सभी पात्र आपस में ही बांट लेते है । हरणात्र के पात्र ऐसा नही करते बल्कि फगोल वाले दिन अन्न को पका कर सहभोज करते है ।

बांढा :- बांढा लोक-नाट्य चम्बा की भरमौर तहसील के होली क्षेत्र में मनाया जाता है । भरमौर के लोग प्रायः सर्दियों में मैदानी क्षेत्रों को चले जाते हैं । यह प्रवास प्रायः असूज मास के प्रथम सप्ताह में आरम्भ हो जाता है अतः बांढे का आयोजन स्थान छोड़ने से पहले ही कर लिया जाता है । इसका आयोजन भिन्न-भिन्न गावों में असूज मास की संक्रांति से नौ प्रविष्टे तक लगातार मनाया जाता है । यह विभिन्न तिथियों को विभिन्न गांवों जैसे चण्हौता, [illegible]टकर,क़वासी और टयोल आदि गांव में आयोजित किया जाता है ।

बांढे का आयोजन किसी मन्दिर के प्रागण में किया जाता है । यह रात को होता है परन्तु उसी दिन के मनोरंजन के लिये प्रथा के तौर पर एक लम्बे और कोमल दयार के वृक्ष को काट कर रस्सा खींचने की तरह की प्रतियोगिता की जाती है । यह प्रतियोगिता दो अलग-अलग क्षेत्रों के लोगों के मध्य होती है । प्रतियोगिता में हार-जीत को विशेष महत्व दिया जाता है । हारने वाले पक्ष का उपहास किया जाता है जब कि जीतने वाले पक्ष का जयध्वनि से स्वागत किया जाता है ।

उसी दिन रात को देवालय के प्रागण में बांढा लोक नाट्य का आयोजन किया जाता है । रात को प्रकाश की आवश्यकता रहती है अतः 'दयार' वृक्ष की लकड़ी (जंगणी) से 'धियाणा' सारी रात प्रज्वलित रखा जाता है । सभी लोग अपने-अपने धर से लकड़ी के गट्ठे ले आते हैं ताकि आग सारी रात प्रज्वलित रहे । हरणात्र की

tharahkardu.in

तरह कई प्रकार के स्वांगों की व्यवस्था की जाती है । अन्य स्थानों में बांढे के स्वांगों में चन्द्रोली की व्यवस्था नहीं होती परन्तु यहां चन्द्रौली का अभिनय भी आयोजित होता है । हिरण का स्वांग भी रचाया जाता है । मनोरंजन के लिये अन्य वन पशुओं के स्वांग रचाये जाते हैं । गद्दी और गद्दण के स्वांग बनाने की भी प्रथा है ।

हर स्वांग अपने-अपने अभिनय और वाक्पटुता का चातुर्य दिखाने का प्रयत्न करता है । नाचने-कूदने और हंसी-मख़ोल से दर्शकों को व्यस्त रखने का प्रयत्न किया जाता है । थोड़ी-थोड़ी देर के बाद सारी रात हंसी के फव्वारे फूटते रहते हैं ।

इसी प्रकार भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में नौ दिन बांढा उत्सव मनाया जाता है।

हरिरंग का दृश्य

डाऊ का स्वांग

राग बसन्त

HAACL पंजीकरण संख्या- 28271/75

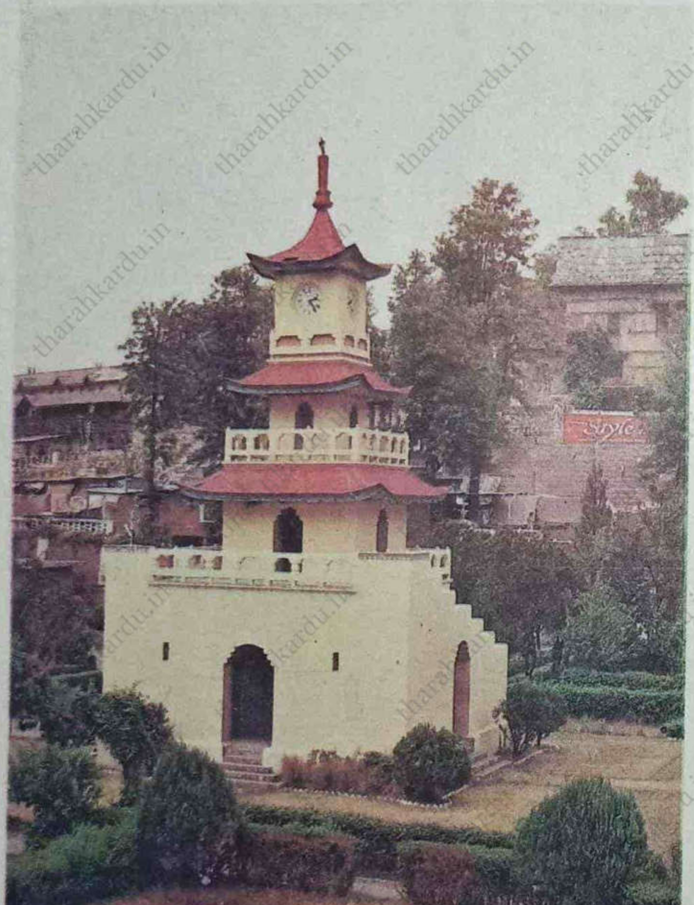

सेरी मंदिर, मण्डी

प्रोग्रसिव आफसेट प्रिन्टर्स, गगल, कागडा, फोन न∙54 द्वारा मुद्रित